पंत : दर्शन और विचारधारा

६ गांधीवाद और पंत काव्य
६ मार्क्सवाद और पंत काव्य
६ अरविन्द दर्शन और पंत काव्य
६ दर्शनिक विचारधाराओं की काव्यात्मक परिणतियां
कोई रचना विचारशृंखला अथवा विचारशील नहीं होती क्योंकि इसका मतलब चेतना विहीन होना होगा। हर रचना में अपरेक्षा रूप से कोई न कोई दर्शन या विचारधारा विद्यमान होती है यहाँ तक कि विचारधारा के अंत की घोषणा के साथ लिखी गयी रचना में भी।

कला और विचारधारा के संबंध को लेकर विवाद और मतभेद लम्बे समय से चल रहा है। बल्कि बहुत हद तक इस विवाद ने कलावादी बनाम यथार्थवादी विवाद का रूप ले लिया है। विचारधारा के आधार पर प्रमुख कृतियों की आलोचना भी हुई है। उदाहरण के लिए मुख्तिबोध द्वारा कामायनी की आलोचना।

इस विवाद के विस्तार में न जाकर यहाँ यह देखना प्रारंभिक होगा कि विचारधारा साहित्य को और साहित्य विचारधारा को किस दीर्घा तक प्रभावित एवं संचालित करता है।

यह प्रारंभिकता इसलिए बढ़ जाती है कि विचारधारा और साहित्य के अंतर्साम्बंध का आधुनिक साहित्य में शायद पंत साहित्य से सुन्दर उदाहरण नहीं निलगा। वे छायावाद के कवि मात्र नहीं हैं; छायावादी विचारधारा और भाव बोध के साथ-साथ भाषा के संस्थापन की बात की जाय तो उनकी पतल पूर्वा की भूमिका को छायावाद का घोषणापत्र' कहना गलत नहीं होगा।

पंत के काव्य लेखन का कला बहुत लम्बा है। इस दौरान वे विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित हुए हैं जो उनके काव्य में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में विद्यमान हैं। यहाँ विचारणीय यह है कि पंत ने अपने समय के प्रचलित विचारधाराओं को काव्य के स्तर पर किस रूप में स्वीकार किया है। वर्तमान विभिन्न विचारधाराओं के कोरे प्रमुख मात्र हैं। कला और विचारधारा के संबंध में लुई अल्पसूचक लिखते हैं - "कला विचारधारा से पैदा होती है लेकिन पैदा होने के साथ ही आंतरिक अलगा की प्रक्रिया के सहारे वह विचारधारा से स्वतंत्र हो जाती है। कला विचारधारा से स्वतंत्र होकर विचारधारा की ओर संकेत करती है।"

(संदर्भ और कर्म – प. 12) क्या पंत अपनी काव्य यात्रा में कला और विचारधारा के इस संबंध का अत्तर्नियम हानि कर सकें हैं? इसी के खोजी इस अध्याय का उद्देश्य है।

गांधीवाद और पंत काव्य

पंत के सक्रिय लेखन एवं गांधी का भारतीय राजनीति में प्रवेश लगभग साथ-साथ हुआ। गांधी का भारतीय राजनीति में आगमन एक नयी घटना थी। उन्होंने राजनीति एवं जीवन के क्षेत्र में ऐसी अवधारणाएं प्रस्तुत की जो आगे चलकर वैयक्तिक एवं सामाजिक
पंत के काय्य में गांधीजी के हस्तक्षेप के प्रवर्तक के पूर्व हमें गांधीजी के संसार राजनीति के अवसरों पर चर्चा की आवश्यकता है। गांधी धर्म एवं राजनीति को अलग-अलग नहीं मानते हैं। दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं, एक के बिना दूसरे की कल्पना भी संभव नहीं है। उन्हीं के शब्दों में — "मेरे लिए धर्मविहीन राजनीति महत्वहीन है। नीति शून्य राजनीति सर्वथा व्यावस्था है। राजनीति धर्म की अनुगमनी है। धर्म से शून्य राजनीति एक मूल्यज्ञाल है क्योंकि उससे आत्मा का हमना होता है।" गांधी के लिए राजनीति एक पवित्र कर्म है जहाँ साध्य एवं साधन दोनों की पवित्रता एक समान होनी चाहिए। बिना नैतिकता के राजनीति संभव नहीं है। उन्हीं के शब्दों में — "मेरी सत्यनिष्ठा ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में लायी है ... जो यह कहते हैं कि धर्म से राजनीति का कोई संबंधकर नहीं, वे धर्म का अर्थ ही नहीं समझते हैं।" गांधी के लिए 'धर्म' एक व्यापक अवधारणा है जिसमें संकीर्णता की वू दूर-दूर तक नहीं है।

गांधी 'मानव श्रम' की प्रतिष्ठा करते हैं। वे मशीन के नियंत्रक नहीं हैं लेकिन जहाँ मशीन से मानवता को खतरा उत्सर्जन होनेवाली संभावना होती है, वहां उसे वे अनावश्यक मानते हैं। गांधीजी के केंद्र में 'मनुष्य' है, गांधी मानव के शक्तिपूर्ण हैं। उनका कहना है कि "मशीन उसी साध्य तक अच्छी है जब तक वह मनुष्य की सेवा करे। लेकिन जब वह मनुष्य को गुलाम बनाने का प्रयत्न करता है तब वह अच्छी नहीं रह जाती।" गांधी के राय में यह अर्थव्यवस्था फिदनीय है जो जनता का शोषण करे तथा सम्पत्ति का केन्द्रण समाज के ठोटे लोगों के बीच हो। इसलिए उन्होंने 'पंज उत्पादन (Mass Production) की जगह 'जनपंज उत्पादन (Producation by the Masses) की प्रणाली को उचित बताया है।

गांधी ने साध्य और साधन दोनों की पवित्रता पर बल दिया है। वे साधन को साध्य से पहले रखते हैं और कहते हैं — जैसे साधन होंगे वैसा ही साध्य भी होगा। साध्य की प्रकृति साधन की प्रवृत्ति से निर्धारित होती है। साधन की तुलना बीज से कर सकते हैं, साध्य की वृक्ष से। जैसे बीज बालेंगे वैसा ही वृक्ष होगा। अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग'
में गांधी जी ने लिखा है — “मेरे निर्दय अनुभव ने मुझे विश्वास दिला दिया है कि सत्य से अलग कोई ईश्वर नहीं है। और सत्य की सिद्धि का एकमात्र उपाय अहिंसा है। अहिंसा की अखंड साधना से ही सत्य का पूर्ण साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता है।” “अहिंसा का अर्थ है हिंसा का छोड़ना का प्रयत्न, जो जीवन में अनिवार्य है। अहिंसा का लक्ष्य है मनुष्य को शारीरिक बंधन से छुटकारा ताकि वह ऐसी स्थिति प्राप्त कर सके जिसमें नाशवान शरीर के बिना जीवन संभव हो।” अहिंसा का सकारात्मक पक्ष है मानव−प्रेम। अहिंसा वह सिद्धांत या नीति है जिसमें उसके विरोध को प्रेम से जीता जाता है, घृणा या लड़ाई से नहीं।

प्रेम के महत्व के संबंध में महात्मा गांधी इस प्रकार लिखते हैं — “प्रेम कभी कोई मांग नहीं करता, वह हमेशा देता है। प्रेम हमेशा कष्ट उठाता है, वह कभी बदलता नहीं लेता।” वे आगे कहते हैं अहिंसा का आधार सत्य और उसका अस्त्र प्रेम है। आंतरिक शुद्धि, अनशन, अभ्यास, अपरिश्रम, वैर्य आदि अहिंसा के आवश्यक अंग हैं। गांधी यहां तक कहते थे कि —“मेरे लिए अहिंसा का स्थान स्वराज से पहले है।”

सामाजिक क्रांति का गांधीवादी तरीका सत्याग्रह और सबित्य अवज्ञा का है।
‘सत्याग्रह’ का शब्दार्थ है — सत्य+आग्रह अर्थात सत्य पर अड़क रहना (Insistence of truth) ‘सत्य’ क्या है इसका निर्यथ कैसे हो ? जब अहिंसा का पालन करते हुए मनुष्य आत्मशुद्धि कर लेता है तो उसकी अत्याचार ही सत्य का दर्पण बन जाती है। सबित्य अवज्ञा का मूल अर्थ है — ऐसे कानून का उल्लंघन जो स्वयं अन्यायपूर्ण हो। विस्तृत अर्थ में जब सरकार की किसी नीति पर विरोध प्रकट करने के लिए या किसी राजनीतिक सुधार की मांग पर सरकार का ध्यान केन्द्रित करने के उद्देश्य से कोई कानून तोड़ जाता है, तो उसे सबित्य अवज्ञा कहा जाता है। गांधी के अनुसार सबित्य अवज्ञा का अर्थ यह है कि — सामान्यरूप से कानून का हार्दिक सम्मान किया जाय; केवल अन्यायपूर्ण कानून को ही तोड़ा जाय; ऐसे कानून का उल्लंघन सबित्य अहिंसात्मक होना चाहिए। छिपाकर नहीं, और कानून तोड़ने पर जो दंड मिले उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए। किर सबित्य अवज्ञा का सहारा तभी लेना चाहिए जब अनुभव बिन्य के सारे प्रयास किये जा चुके हों और वे बिफल हो चुके हों।” सबित्य अवज्ञा का ध्येय सत्ताधारियों का हदय परिवर्तन करना है, उन्हें विवाद करना नहीं।”

गांधी के अनुसार स्वराज’ का अर्थ केवल राजनीतिक स्तर पर विदेशी शासन से स्वाधीनता प्राप्त करना नहीं है; इसमें सांस्कृतिक और नैतिक स्वाधीनता का विचार भी निहित है। उनके अनुसार स्वराज का मौध उस देश में पनपता है जिसकी उहें अपनी परम्परा से जुड़ी हों, परन्तु वह इन परम्पराओं की तुलियाँ के प्रति भी सजग हो और दृसरों
गांधी की दृष्टि में आदर्श समाज व्यवस्था वही हो सकती है जो पूरी तरह अहिंसा पर आधारित हो। जहां हिंसा का विचार लुप्त हो जाएगा वहाँ 'दण्ड' या 'बल-प्रयोग' की गुंजाइश नहीं रहेगी। अतः राज्य संस्था की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। उनका मानना है कि राज्य की नीति 'हिंसा' पर टिकी है, अहिंसात्मक समाज में उसका कोई स्थान नहीं हो सकता। उनके आदर्श समाज में प्रचेक व्यक्ति का धर्म या सामाजिक दायित्व एक सेवा का रूप धारण कर लेगा। चूंकि इसमें हर तरह की सेवा या श्रम को एक जैसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाएगा; इसलिए वहाँ श्रम की गरिमा स्थापित हो जाएगी। इसी अर्थ में यह वर्गीकृत समाज होगा। कुल मिलाकर गांधी एक ऐसे आदर्श समाज की संकल्पना करते हैं जो वर्गीकृत और राज्यवादी समाज होगा। गांधी अहिंसा पर आधारित जिस वर्गीकृत और राज्यवादी समाज की कल्पना करते हैं वह बहुत ही आदर्शवादी और नैतिक है। इस समाज की स्थापना के लिए सब व्यक्तियों का चरित्र बहुत उन्नत होगा। यह कार्य लंबे रातों का है। अतः: तक्तलीन व्यवस्था के लिए एक व्यवहारिक समाधान प्रस्तुत करते हैं जो न्यायिक या दृष्टिकोण का सिद्धांत कहलाता है। इस सिद्धांत के अनुसार "जब तक मनुष्य सारे यात्रिक सिद्धांतों के बिना काम चलाने में अभ्यस्त नहीं हो जाता और जब तक बड़े-बड़े उद्देश्यों, भारी मशीनों और बड़े-बड़े व्यापार व्यवसायों को समाप्त नहीं किया जा सकता तब तक यह निरूपित करना जरूरी है कि बड़े-बड़े उद्देश्य-व्याख्याओं का प्रयोग केवल सार्वजनिक हित में हो और वे व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के साधन या ‘हिंसा’ के उपकल्प न रह जाए।

इसके लिए गांधी पूंजीपतियों के 'हदय परिवर्तन' की मांग करते हैं ताकि पूंजीपति अपनी संपत्ति को निजी संपत्ति न समझकर समूह समाज की धरोहर हो।' दूसरे शब्दों में वर्तमान व्यवस्था को अहिंसात्मक बनाने के उद्देश्य से पूंजीपति के हदय परिवर्तन का प्रयत्न किया जाय ताकि वे अपने नियंत्रण में आने वाली संपत्ति को अपनी व्यक्तिगत स्वार्थ के बजाय समूह समाज के नए अंग बनाने का उपयोग लातें। यह आदर्श समाज की नैतिकता और मानसिक उत्साह वाली समाज की नैतिक मूर्ति है। इससे हासिल किया जाता है कि उपयोग अनुकूल है।

गांधी भारत की उन्नति के लिए उस समय का विरोध करते हैं जो मनुष्य को स्वायत्त बनाने के लिए नैतिक पत्तियों का उपयोग करते हैं। नैतिक उत्साह का रास्ता आत्म-चित्त-स्वार्थ और लोक-भावना की मांग करता है। 1927 के 'यंग इंडिया' के अंतर्गत उन्होंने लिखा था: ‘में यह नहीं मानता कि इतिहास को बदलने या पूर्ति के साथ
जुड़ने से संसार अपने लक्ष्य की ओर एक कदम भी बढ़ा पाएगा। आज की दुनिया में दूरी और समय के अन्तराल को कम करने, भौगोलिक इंसासों को बढ़ाने और उनकी तृप्ति के लिए धरती का कोना—कोना छान मारने की जो अंधी दोंड़ चल रही है, वह मुझे विलुप्त पसंद नहीं। यदि आधुनिक समय के ये सभी लक्षण हैं — और मुझे इसके यहीं लक्षण समझ आते हैं तो मैं इसे नैतिक समय कहता हूँ।”9 वस्तुतः गांधी विकास की ऐसी किसी भी अवधारणा के विरुद्ध थे जिसका लक्ष्य भौगोलिक इंसासों को बढ़ाना और उनकी पूर्ति के उपाय बुझाना हो। उनका मानना था कि मनुष्य को नैतिक वर्तुः का उत्तन ही उपयोग करना चाहिए जितना उनके शरीर को स्वरूप रखने के लिए अनिवार्य हो। इससे अधिक की इंसानी मनुष्य को मोहमाया और श्रम के जाल मे कंसा देती है। कुल मिलाकर गांधी ऐसे भावी समाज की कल्पना करते हैं जहां श्रम के सहारे जीव का अर्थमक जुझे होंगे। जहां प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम का इतना फल अवस्थ मिलेगा कि वह साधा जीवन बिताकर अपने नैतिक जीवन को उन्नत कर सके। यह समाज (राज्य) प्रशासन के स्तर पर विकस्नीकृत होगा। उन्होंने यह विचार रखा कि उनका आदर्श राज रहते—होते आल्मिनिर्भर ग्राम समुदायों का संघ होगा। जिसे एक विविधता पंचायत चलाएगी। इस तरह की राज्य व्यवस्था को विस्तृत अधिकार तंत्र की जरूरत नहीं होगी। अपनार बहुत कम होगे। गृह बुढ़ की भी संभावना नहीं रहेगी। अतः पुलिस और सेना की भी आवश्यकता नहीं होगी।

गांधी के विचारों ने पंत काव्य को किस हद तक प्रभावित किया था। यह स्वयं पंत के कथन से ही स्पष्ट हो जाता है — “देश की दयनीय दशा के विषय में मेरी वेदना और पीड़ा उन वर्षों की मेरी रचनाओं में अभियोजक हुई हैं। सन् 1930 के पश्चात मेरी काव्य साधना का विकास श्रद्धाय आत्मगौरव की दृढ़ता होती हुई मानवा के और महात्मा गांधी के मेन्तुत्व में बलशाली बनते हुए स्वतंत्र संग्राम के वातावरण में हुआ। यह संघर्ष साध ही हमारी सांस्कृतिक परम्परा से सम्बद्ध रहा और उसका स्वरूप अहिंसात्मक रहा। राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जागरण हमारे यहां साथ—साथ ही हुआ।”10

‘मानव’ शैर्षक रचना में पंत यह स्वीकार करते हैं कि मानव को कारण ही यह जग सुन्दर और महान दिखाई देता है — “सीखा तुमसे फूलों ने, मुख देख मंद मुसकाना।” बावजूद इसके उन्हें यह भी लगता है कि अभी मानव अपनी पूर्ति को प्राप्त नहीं कर सका है क्योंकि वह अभी स्वतंत्र और समुदृत् नहीं है, उसकी स्वतंत्रता और समुद्र को पंत ‘नवजीवन’ में देखते हैं —

‘चाहिए विश्व को नव—जीवन

यह ‘विश्व नव जीवन’ प्राप्त कैसे हो। कवि तो अभी क्रांतिकारी परिवर्तन के विचार
से कोई दूर है। अतः कवि गांधी के सांस्कृतिक एवं नैतिक उत्थान की अवधारणा की तरफ़ देखता है। पंत मानते हैं कि गांधी का सर्वश्रेष्ठ सेवाकार्य, मानवतावाद एवं नव मानव संस्कृति के विकास में निहित है। गांधी को ‘मानवतावाद के बीजारोपण, ‘भावी संस्कृति के निर्माता, ‘अंतर्र तथा प्रयोधक’ आदि संज्ञाओं से संबंधित करते हुए पंत लिखते हैं—

“जड़ता, हिंसा, सफर्च में भर चेतना, अहिंसा, नम ओज, पशुता का पंजक बना दिया तुम्हारे मानवता का सरोज।

* * *

जड़वाद जर्जित जंग में तुम अवतार हुए आल्मा महान
यन्त्राघ्रंगुत युग के करने मानव जीवन का परित्राण,
बहु छाया पिताओं में खोया, पाने यज्ञित्व प्रकाशवात
फिर रक्त मांस प्रतिमाओं में पूरकने सत्य से अमर प्राण।’’

‘स्पष्टता’ नाटक में संभार इन्द्रापली को बताता है कि किस प्रकार धरती पर निराकर का साम्राज्य फैला है ‘सारे लोग अध्याचारी धनियों और उनके द्वारा उत्तीर्णित आम्मे, पदात्मेत अभिमान में बदे हुए हैं। लोगों की वस्त्र सीता इत्यादि यह है कि धरती पर नए र्वर्ण युग’ की सृष्टि हो। पर ज्ञान तथा विज्ञान से तो लोगों को केवल सम्पत्ति की भाषा हो सकती। तब इन्द्रापली कहती हैं— मानव धरती पर सुखमय एवं शांतिपूर्ण जीवन की सृष्टि आध्यात्मिक संस्कृति के विकास द्वारा ही हो सकती है।’’’

‘उत्तर’ के प्रस्तावना में पंत लिखते हैं—
“राजनीतिक लोकतंत्र जहा हमारे भोग के संचरण की व्यवस्था तथा रक्षा करता है,
सांस्कृतिक दिशा द्वारा हमारे मनुष्यत्व (आल्मा) का पोषण करेगा।’’

पंत के दृष्टि में गांधी का सर्वोपरि सेवाकार्य यह रहा है कि उन्होंने प्राप्त परिरथितियों में ‘अहिंसा’ सिद्धांत का पुनरुत्थान किया, उन्हीं के कारण जनता को दमन और हिंसा का सामना करने के लिए एक नया शस्त्र मिल गया और लोग समझ गए कि ‘घृणा का सामना घृणा से नहीं, अपितु प्रेम से करना चाहिए।’’ कवि कहता है—

साम्राज्यवाद था कंस, बंदी, मानवता पशुवलाकात
श्रृंखला दासता, प्रहरी वह, निर्मम शासन—पद शक्ति—ब्राह्म
काराग्रह में दे दिव्य जन्म, मानव आल्मा को मुक्त, कांत
जन—शोषण की बड़ती यमुना तुम्हारे की नत, पद—प्रणात शांत।

बापू के सिद्धांतों और कृत्यों का काव्यालंक चित्रण करते हुए उन्होंने उनकी वर्तमान योजना का विषय वर्णन किया है—
उर के चरखे में कांत सूक्ष्म युग—युग का विषय जनित विषय, गुजित कर दिया गए जग का भर तुमने आत्मा का निदान, रंग रंग ख़ूबदर के सूत्रों में नव जीवन आशा, स्थृता, हलाद मानवी कला के सूजधार, हर लिया यत्र कौशल प्रवाद।”

पंत ने गांधी के असहयोग आंदोलन, अहिंसा, दार्शनिक विज्ञान आदि का कवित्वपूर्ण विचार किया है। गांधी—दर्शन की व्याख्या करते हुए वे लिखते हैं —

ये राज्य, प्रजा, जन; साम्प्रदाय शासन चालन के मुतक यान।
मानस, मानुषी, विकास शास्त्र, है तुलनात्मक, साक्षात्कार।
भौतिक विज्ञानों की प्रसूति, जीवन—उपकरण—चयन—प्रधान।
मथ सूक्ष्म—स्थूल जग, बोल तुम—मानव मानवता का विधान।”

गांधी वर्गीकृत, राज्यवृत्त और लघु उपयोगों पर आधारित देश चाहते थे, न कि अतियातिक एवं प्रौढ़ीप्रद देश। इन्हें विशेषताओं के कारण कवि बापू को श्रद्धापूर्वक नमन करना नहीं मूलता—

आप, तुम मुक्त पुरुष, कहने मिल्या तढ़ बंधन, सत्य राम,
नानूत जयति सत्यं, भा मैं: जय ज्ञान ज्योति, तुमको प्रणाम।”

पंत के अनुसार नव जीवन (संस्कृति) को गतिहीनता तथा रूढ़वाद से मुक्त, ‘दिद्य चेतना’ के मनोहर प्रभामंडल से मंडित और महान मानवतावाद के विचारों से पुष्ट होना चाहिए और यह केवल गांधी के उपदेशों के पालन द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है।

‘युगवाणि’ की पहली ही कविता ‘बापू’ अपने निष्कर्ष पर पहुँचकर युगांत के ‘बापू के प्रति’ की अगली कड़ी हैं यदापि प्रारंभिक पंक्तियों में कवि यह प्रसन खड़ा करता है कि त्यों बिना संघर्ष के ‘धरती पर शाल्ति एवं सुख का अमर साम्राज्य’ स्थापित करना, ‘धरती पर उस स्वर्ग की शृंखला करना, जिसकी आस लोग कभी से लगाए हुए हैं, संभव है। तदापि इसी कविता में पंत ‘संघर्ष की ओर बढ़ने वाले संसार’ को पीढ़ा से मुक्त करने और उससे महान ‘प्रेम—शक्ति’ के सहारे असम्प्लूत तथा पशुता को नष्ट करने के लिए अहिंसा पर ही अपनी आस्था कायम रखते हैं —

किनतात्वों से गढ़ जाओगे तुम भावी मानस को?
किस प्रकार से भर जाओगे इस समरोनमुख भव को?
सत्य अहिंसा से आलोचित होगा मानव का मन?
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जाएगा जग जीवन?

भूतवाद उस धरा स्वर्ग के लिए मात्र सोपान,
जहां आत्मदर्शन अनादि से समाप्ती अमलान।

'प्राम्य' की अधिकांश रचनाओं में ग्राम–जीवन के चित्र हैं। इनमें कवि ने ग्रामीण जीवन
के विविध रूपों और कुरुक्षे के सुन्दर साहित्यांत्र और भावचित्र प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं
में उनका झुकाव सामयिक विचारों के तरफ भी दिखलाई पड़ने लगती है। बाबूद इसके
वे कभी भी गांधी के जीवनदर्शन से सर्वथा मुक्त नहीं हो पाते हैं। 'चरखा गीत', 'महात्मा
गांधी के प्रति', 'संस्कृति का प्रश्न', 'बापू', 'अहिंसा' आदि रचनाएं इसका सबसे प्रमाण हैं।
'चरखा गीत' में कवि स्पष्ट: कहता है —

भ्रम, भ्रम, भ्रम —
धूम धूम, भ्रम भ्रम रे चरखा
कहता : में जन का परम सत्का
जीवन का सीधा सत्यसत्का
भ्रम, भ्रम, भ्रम

'महात्मा गांधी के प्रति' कविता में कवि ने श्रद्धामाव से बापू की प्रशंसा की है। वे यहाँ तक
कह जाते हैं —

सफल तुम्हारा सत्या–वेषण, मानव सत्या–वेषण।
धर्म नीति के मान आधिक सब, आचिरशास्त्र दर्शन मत,

dेख रहे मानव भविष्य तुम मनुष्यक्षु बन अपलक,
धन्य तुम्हारे श्री चरणों में धरा भाज चिर पावन।
परन्तु 'बापू' कविता में कवि यह प्रश्न उठाता है कि सब प्रकार के साधनों के उपलब्ध होते हुए भी क्या कारण है कि संसार में अशांति है ? —

चरमोनन्त जग में जब कि आज विज्ञान ज्ञान,
बहु भौतिक साधन, यंत्र यान, वैभव महान,
संबंध है विद्युत् वाण प्रकट : धन बल निष्ठान,
फिर क्यों जग में उल्पीड़न? जीवन यो अशांति॥

अगली ही पंक्तित में कवि इसका उत्तर भी देता हुआ प्रतीत होता है —

मानव ने पार्थी देशकाल परजय निर्वय,
मानव के पास नहीं आज मानव का आज हृदय !
चर्चित उसका विज्ञान ज्ञान, वह नहीं पायेगा;
भौतिक भाद से मानव आत्मा हो गयी विनिता॥

पर क्या कोई व्यक्तित्व है जो भौतिकता और आध्यात्म का पाणिग्रहण करा सके ? कवि कहता है —

बापू ! तुम पर है आज लगे जग के लोचन ?
तुम खॉल नहीं जाओगे मानव के बंधन ?

‘संस्कृति के प्रश्न’ शीर्षक रचना में कवि स्पष्ट घोषणा करता है कि सामाजिक क्रांति की अपेक्षा सांस्कृतिक क्रांति विकास अधिक आवश्यक है —

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत के समुख,
अर्थ साम्य भी मिटा सकता मानव जीवन के दुख
आज वृहद सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्ड मनुजता को युग-युग की होना है नव निर्मित॥

पंत संसार के परिवर्तन के लिए साधन के रूप में 'क्रांतिकारी बल' — प्रयोग का आहवान
नहीं करते क्योंकि वह मानते हैं कि लोगों के दिखल के बिना ही नवयुग अपने आप उदित होगा। एक दिन आएगा जब लोगों का हृदय स्वयं परिवर्तित होगा।

ई. चेलिस्तेव के शब्दों में हम इस निष्ठर्य पर पहुँच सकते हैं कि — ‘ग्राम्य सांस्कृतिक प्राय: प्रत्येक कविता में नए, पूर्ण जीवन के आगमन की अनिवार्यता और उज्ज्वल भविष्य में विश्वास का स्वर सुनाई देता है। कवि के अनुसार यह उज्ज्वल भविष्य भी साकार होगा जब जन-जन में प्रेर के भाव जागृत एवं विकसित होंगे — ये दे भाव हूँ जो जीवनदायिनी
रसधारा की तरह सभी जनों की आत्माओं को धोका शुद्ध करेंगे और उनमें सच्ची मानवता की ज्योति जगाएंगे (आवाहन)।”26 ‘अहिंसा’ शीर्षक कविता में पंत घोषणा करते हैं कि विश्व का आधार प्रेम ही तो है –

‘भव तत्व प्रेम साधन है उमय विनाश सुनजन, मानवता को शुद्ध करने, जीवन के सभी दुर्भिग्यों एवं भारों से उसे मुक्ति दिलाने और नए पूर्ण समाज की सृष्टि करने का एकमेव साधन प्रेम ही है। यह विचार इस बात का प्रमाण है कि पंत पर गाढ़ी के अहिंसा एवं आत्म सुधारवादी विचारों का स्पष्ट प्रभाव है। गहरा मानवतावाद, आशावादी दृष्टिकोण, काय्य साधना की राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन तथा सभी समसामयिक प्रवृत्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण भाव, गाढ़ी के जीवन दर्शन का ही प्रभाव है। ‘बापू’ की हत्या के बाद ‘पंत’ ने उन्हें अपनी ‘श्रद्धा के फूल’ बढ़ाए हैं। जो संख्या में ग्यारह हैं। कवि उन्हें देखता, दिशा चेतना, आलम का शिखर, मानवता का मेरू, युग मानव आदि विशेषणों से संबंधित करते हुए अपने शोक का इजहार इन शब्दों में करता है –

अन्तर्धान हुआ फिर देव विद्यां धरती पर;
स्वर्ग रुढिरिर से मर्त्यलोक की रज को रंग कर27

साथ ही यह कामना करता है –

मंगल हो देव मृत्यु यह दृढ़त्व विद्यारक
नव भारत हो बापू का घिर जीवित स्मारक !
बापू की चेतना बने पिक का नव कूजन;
बापू की चेतना वसंत बख़ेर नूतन !28

एक स्थान पर कवि ने महात्मा जी के तीन प्रिय सिद्धांतों – सत्य, अहिंसा एवं विश्व प्रेम को नवभारत का जीवन स्मारक बनाने को कहा है –

आओ, अपनी अत्यधिक स्मृति को नीव बनाएं;
उस पर संस्कृति का लोकोत्तर भवन उठाएं।
स्वर्ग शुद्ध धर ‘सत्य’ कलश सर्वच्छ शिखर पर,
विश्व प्रेम में खोल अहिंसा के गवाक्ष वर !29

कवि स्पष्ट कर देना चाहता है कि –

घृणा द्वेष मानव उर के संस्करण नहीं है मौलिक
वे स्थितियों की सीमाएं हैं, जन होंगे भौगोलिक।
आत्मा का संचरण प्रेम होगा जनमन के अभिमुख,
हदय ज्योति से मदित होगा हिसा स्पर्श का मुख।

'श्रृद्धा के फूल' केवल शोक का समुद्र नहीं है बल्कि इसमें समुद्र को शोक से ऊपर उठकर
नवीन प्रकाश की रशिमों को ग्रहण करने की चेतावनी है। दुःख से ऊँचा उठकर दुःख से
बढ़े बनने की शिक्षा है—

उनके उच्चादर्शों से दीप्त अब जनमन,
उसका जीवन—स्वन्त राष्ट्र का बना जागरण।

कवि यहां इतना भावविभार हो जाता है कि वह कल्पना करने लगता है कि पृथ्वी पर
gांधी युग अवतारित हो गया है और 'सत्य' तथा 'अहिंसा' अन्तरराष्ट्रीय वृत्तियां बन गयी
है—

dेख रहा हूँ, शुभ्र चांदनी का—सा निर्माण
gांधी युग अवतारित हो रहा जनधरणी पर।
विगत युगों के तोरण, गुम्बद मीनारों पर
नव प्रकाश शोभा रेखाओं का जादू भर।

x x x
सत्य अहिंसा बन अन्तरराष्ट्रीय जागरण
मानवीय स्पर्शों से भरते केद्रण।

[10]

मार्क्सवाद और पंत काव्य

मार्क्सवाद शोधण के विरुद्ध दर्शन है। इसके केंद्र में 'अर्थ' है। मार्क्सवादियों का मानना है कि सम्पूर्ण व्यवस्था यथा; धर्म, राजनीति, व्यक्ति, समाज आदि 'अर्थ' (मौलिक तत्त्व) से संबंधित होती है। और समाज का सबूत वर्ग 'अर्थव्यवस्था' को अपने हित में उपयोग करने के लिए समाज-समाज पर धर्म, राजनीति, मूल्य परम्परा, भावना, संस्कृति की व्याख्या अपने हित से बढ़ा होकर करता रहा है। इसलिए मार्क्सवाद शोधण के बारे में उपकरणों का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक ढंग से समाज के इतिहास की व्याख्या ‘ऐतिहासिक भौतिकवाद’ के आधार पर करता है। मार्क्सवाद समाज एवं व्यक्ति के परिवेश का विश्लेषण तार्किक आधार पर करता है इसलिए इसे ‘वैज्ञानिक समाजवाद’ भी कहा गया। इसके प्रमुख आधार तत्त्व निम्न हैं।

'इतिहास्यक्त भौतिकवाद' मार्क्सवाद का दार्शनिक आधार है। यह सिद्धांत भौतिकवाद की मान्यताओं को इतिहास्यक्त पद्धति से मिलाकर सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या करता है। यहाँ इतिहास्यक्त से आशय विकास प्रक्रिया एवं भौतिकवाद से तात्पर्य मूलतः से है जो जड़ एवं पदार्थ है। पूर्व की मान्यताओं के विपरीत मार्क्स का मानना है कि जड़ में परिवर्तन के तत्त्व रूप में मिलते हैं, बायाव प्रभाव की आवश्यकता नहीं है। यानी समाज (व्यक्ति) के अन्तर्गत में बदलाव एवं विकास के तत्त्व हैं, उन्हें जागरूक करने की आवश्यकता है। विकास का मूल है 'विरोध'। इसकी तीन अवस्थाएँ बाद-प्रतिवाद एवं संवाद हैं, जो निरंतरता में घटित होती रहती हैं।

'ऐतिहासिक भौतिकवाद' जो इतिहास्यक्त भौतिकवाद का पूरक है, इतिहास की आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। यह इस मान्यता के साथ शुरू होता है कि इतिहास के किसी भी युग में समाज के आर्थिक संबंध समाज की प्रगति के रास्ता एवं आपसी संबंधों को निर्धारित करते हैं। यानी अभिव्यक्ता (धर्म, राजनीति, संस्कृति...) में परिवर्तन — आधार के बदलने से निर्धारित होता है। और बदलाव की प्रक्रिया 'उत्पाद की शक्तियाँ एवं उत्पादन के संबंध' से अनुप्राप्त होता है। 'उत्पादन के साधन' के बदलने से 'उत्पादन के संबंध' भी बदल जाते हैं। इतिहासक्रम में देखें तो अब तक विकास की चार अवस्थाएँ हैं — आदिम सामाज्यवाद (पूर्ण समानता), दास युग (सरे-तरे की भावना), सामाजी युग (कृषि कदं) एवं पूंजीवाद (उद्योग-घंटे)। मार्क्सवाद के अनुसार पूंजीवाद के पतन (जो अपनी आर्थिक स्थितियों के कारण) के बाद 'सामाज्यवाद' समाज की स्थापना होगी, जो शोषणविहीन, राजनीतिवीण, बर्बिनीत होगा। यहाँ पूर्ण समानता की स्थिति होगी, यानी सामथर्य के अनुसार कार्य एवं आवश्यकतानुसार मुद्गतान।
समाज में सतेंद दो वर्ग रहे हैं — शोषक एवं शोषित, या साधन सम्पन्न एवं साधन
नशीन। इनके बीच संघर्ष निरंतर चलते रहता है साधन सम्पन्न वर्ग, अपनी सम्पत्ति बचाने
एवं उसमें वृद्धि के लिए नियत नए-नए तरीकों को अपनाता है। वही साधनशीन है जिनके बीच
आवश्यकताओं के लिए प्रयत्न करता है। इस स्थिति में वर्ग—सांस्कृतिक बात बेमानी हो जाती
है क्योंकि शोषक के चरित्र में बुनियादी परिवर्तन सम्भव नहीं है। अतः दोनों वर्गों के बीच
संबंध भाईचारे के न होकर, सदैव संघर्ष के रहे हैं। मार्क्स के शब्दों में — “आज तक के
सारे समाज का इतिहास वर्ग—संघर्ष का इतिहास रहा है। मतलब यह कि जब से सम्पन्न
समाज अस्तित्व में आया तभी से सम्पत्ति के आधार पर समाज दो वर्गों में बंटा रहा —
सम्पन्न एवं बिपन्न वर्ग। इन वर्गों का परस्पर संघर्ष ही सारे इतिहास का विस्तार रहा है।”
यह वर्ग संघर्ष वात्स्य में उत्पादन प्रणाली में निहित अंतर्वर्तों की आभासित है। यह तभी
समाप्त होता है जब उत्पादन की शक्ति पूर्णता पर पहुंच जाती है। यानी पूंजीवाद के विकास
की गति ‘श्रम जाएगी (सामाजिक बाद) तो सर्वित्त वर्ग क्रांति हासिल पुरानी व्यवस्था का
अंत कर, सामाजिक स्थलाकर बनेगा, तब मानव समाज के बंधन से मुक्त होकर, पूर्ण
मानवीय गरिमा के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए स्वतंत्र हो जाएगा। इस प्रकार
वर्ग—संघर्ष अपनी चरमसीमा पर पहुंच कर क्रांति (हिस्तक भी हो सकती है) को जन्म देता
है और यह क्रांति सामाजिक परिवर्तन का अनिवार्य अंग है।

वर्तमान युग पूंजीवाद के शोषण से दृढ़ है। पूंजीपति, मजदूरों का हक मारकर, उन्हें
उनकी बुनियादी आवश्यकताओं से बंधित रखकर, अपनी सम्पत्ति में निरंतर वृद्धि कर रहा
है। कह सकते हैं कि समुद्र व्यक्ति निरंतर और समृद्ध बन रहा है, गरीब, निरंतर गरीब।
मार्क्स ने इस शोषण प्रक्रिया को ‘अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत’ के माध्यम से उद्घाटित
किया है। उत्पादन के चार तत्त्व हैं — भूमि, पूंजी, संगठन, स्व-श्रम। इसमें ‘श्रम’ ही मूल्य
अभावित एवं उत्पादन की क्रमता रखता है। द्वितीय वस्तु का मूल्य सम्बन्ध लगे श्रम से
अभावित होता है। कह सकते हैं कि केवल ‘श्रम’ ही, समाज के लिए मूल्य का सृजन करता
है। ‘श्रम’ मजदूर वर्ग करता है। मजदूर जितना ‘श्रम’ करता है, पूंजीपति उसका पूरा मूल्य
न चुका कर, अपने पास रख लेता है। इस प्रकार पूंजीपति मजदूरों का हक घुसाकर, निरंतर
समृद्ध बनता है, इसलिए इसे ‘बेडमानी’ की क्रमांक माना गया है। मजदूर वर्ग अपने इसी हक
को खोने के लिए संघर्ष का रास्ता अपनाता है। तब क्रांति होगी और समस्त समाज की
स्थापना होगी, जहां न कोई शोषक होगा और न ही शोषित।

तीसरे दशक के अनंत और चतुर्थ दशक के प्रारंभिक वर्गों में सांसारिक के आर्थिक
संकट का विषेष अनिष्ट प्रभाव भारत के समस्त आर्थिक एवं सामाजिक—राजनीतिक जीवन
पर पढ़ा जिससे वैसे ही फिर देख सकते हैं भारतीय अर्थव्यवस्था की अत्यन्त निकृष्ट स्थिति में अधिक पतल हुआ, देश भर में बेरोजगारी हैल गई परिणामस्वरूप उपनिवेशवादियों तथा भारतीय जनता के बीच का विरोध तीव्रतर हो गया। सक्रिय स्वाधीनता संघर्ष में इन वर्षों में लोगों को अनेक दल सम्मिलित हुए। भारतीय अभियुक्त वर्ग का संगठित संघर्ष और विस्तृत हो गया। इसी दशक में भारत में एक शक्तिशाली वाणिज्य का उदय हुआ।

इससे भारतीय राजनीति में अत्यंत धार्मिक और सुसंगठित सामाजिक और अर्थव्यवस्था का प्रवेश हुआ। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की धारा और दलित—श्रृंखलाओं की सामाजिक आर्थिक उन्नति के धारा एक दूसरे को नजरदार आने लगी। इसके पीछे मुख्य प्रेरक शक्ति रूसी क्रांति (1917) थी। इस क्रांति से लोगों को एक शिक्षा मिली: यदि आम जनता (मजदूर, किसान और बुढ़िजीवी वर्ग) संगठित होकर जारी प्रति शक्तिशाली सामाजिक व भाष्य का सदस्य बदल सकते हैं और ऐसी सामाजिक व्यवस्था कायम कर सकते हैं जिसमें एक आदमी दूसरे आदमी का शोषण नहीं करता, तब भारत सामाजिक व भाष्य संघर्ष करने वाली भारतीय जनता भी ऐसा कर सकती है। इन सब का परिणाम यह हुआ कि विकास हुए गुटों से फिरकर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का जन्म हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को देश के सबसे बड़े राजनीतिक संगठन का स्कूल प्रदान हुआ और उसने ओपरनिवेशिक पराधीनता से भारत को समृद्ध स्वाधीनता दिलाने के लिए संघर्ष का धोखा कर दी। पं. जवाहरलाल नेहru एवं बुध्धि चंद्र बोस इसके अनुगा बने। उन्होंने पूरे देश का दौरा किया और अपने दौरे में पूजीवाद और जमीदार प्रथा की आलोचना की। यही नहीं नेहरु ने गांधी के 'द्रुतस्तितिप सिद्धान्त' और उनके द्वारा वर्ग संघर्ष को अस्वीकार करने की भी आलोचना की। परिणामस्वरूप सामाजिकवादी शासकों और भारतीय राष्ट्रीय बुढ़िजीवी वर्ग का परस्पर विरोध प्रबल हुआ। राष्ट्रीय सत्ता आंदोलन का वामपथी दल जोर देकर ग्रहण हुआ।

इन वर्षों में भारतीय बुढ़िजीवी वर्ग के प्रगतिशील लोगों की एक जुड़ता भी बढ़ती गयी। सन 1936 में 'आखिर भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। उसने भारतीय साहित्य में लोकतंत्री प्रकुप्तियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वाधीनता आंदोलन को सर्वजनवादी संघर्ष का स्कूल प्रदान हुआ। अब वह न केवल बुढ़िजीवी सुधारवादी वाभाचत से बाहर निकला बल्कि उसने गांधीवादी विचारधारा की नींव तक हिला दी। अब भारतीय बुढ़िजीवी वर्ग, दूसरे देशों के प्रगतिशील विचारधाराओं को और विशेषरूप से मार्क्सवादी विचारधारा को धर्म विकृति करने के लिए पहचाना लगा। पैतृ और इस विचारधारा के संदर्भ में पैतृ का ही एक कदम उल्लेखनीय है – 'उस समय प्रथम महायुद्ध के बाद जो परिचय आदर्शवादी विचारधारा को आपत्ति लगा तथा रुसी
राजनीति में जो मार्क्सवाद है, साहित्य में वही प्रगतिवाद है। प्रगतिवाद मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप है। यह प्रगतिशीलता पैतृक काव्य में ‘युगांत’ के प्रारंभ से देखी जा सकती है। ‘युगांपी’ तथा ‘ग्राम्य’ में वह अपनी जड़ें जमा लेती है। ऐसा नहीं है कि ‘युगांत’ में आकर कवि अद्वैत प्रगतिशील हो गया और ‘ग्राम्य’ के बाद रुढ़ और परभाववादी। प्रगतिशीलता के बीज पैतृक काव्यिक कविताओं में भी विद्यमान हैं, समय के सापेक्ष ‘युगांपी’ तथा ‘ग्राम्य’ में वह अधिक मुखर हो उठता है। वे ‘तीणा’ में जिस समय भक्ति से गदगद हो ‘माँ’ से आत्म निवेदन कर रहे थे, उसी समय विश्व प्रेम और विश्व सेवा की बात भी उनके मन में उठती थी।

विश्व-प्रेम का रूचिकर राग
पर-सेवा करने की आग,
इसको संध्या की लाली सी
माँ! न मन्द पड़ जाने दे।

‘परिवर्तन’ शीर्षक कविता में कवि स्वर्णिम अतीत के विनाश, वर्तमान की पीड़ा और भविष्य के निर्माण पर गंभीरता से विचार करता प्रतीत होता है। ‘गुंजन’ में तो वह स्पष्ट ही कहता है –

तप रे मधुर-मधुर मन !
विश्व बेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल।

‘युगान्त’ की रचना के समय ही पैतृक उस नई दिशा की ओर मुड़ जाते हैं जो उस समय युग परिवर्तन की ओर उन्मुख थी। विचारों के परिवर्तन की दृष्टि से उनकी ‘कोकिल’ रचना उल्लेखनीय है –

गा, कोकिल, बरसा पावक कण।
नष्ट व्रत हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस घंट जग के जड़ बन्धन !
पावक-पत्र धर आदे नृतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन।
कवि न केवल 'नवल मानवपन' की कामना करता है वरन वह उन प्राचीन रुढ़ियों को जस्ता और ध्वस्त करने हेतु प्रेषित भी करता है, जो समाज की प्रगति को रोके हुए हैं —

दूत झरों जगत के जीवन पत्र,
हे सस्त्र ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण !
हिम-लाप—पीत मधुबन-भीत,
तुम पीतराग, जड़, पुराचीन।

प्रगतिवादियों की तरह पंत का सामाजिक विचल, सामाजिक यथार्थवाद और पूजीवाद के विरोध के रूप में दिखाई पड़ता है। अब उन्हें स्वर्णम अतीत 'कल्पना के सुनहरे पंख,' 'भोर की मुस्कान', 'संध्या का गान', इतने आकर्षित नहीं करते जितने ऊबड़-खाड़ मटमले घर, वस्त्रहीन और दरिद्र 'भूघन' —

यह भारत का ग्राम, सम्पत्ता संस्कृति से निवासित
झाड़ फूस के विवर, क्या यही जीवन शिल्पी का घर?

मिट्टी से भी मटमले तन, अधफटे कुछले जीवन वसन
ज्यों मिट्टी के ही बने हुए ये गवईं लड़के भू के घन।

कवि की संवेदनशील अंत-दृष्टि ने कुरूप और सुदर दोनों का दर्शन किया है। एक मजदूर का किमत खींचते हुए वह लिखता है —

"सिर से आंचल खिसका है — धूल मरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष — ढोती तुम सिर पर घर कूड़ा।"

गाँव के बुढ़िंद्र की, 'अंधकार की गुहा सरीखी' आखों का जिनमें ग्राम जीवन के सारे अत्याचारों, पीड़ों, वेदनाओं की छाया है, वर्णन पंत इन शब्दों में करते हैं —

"अंधकार की गुहा सरीखी
उन आखों से उरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारूण,
देन्य दुख का नीरव रोदन।
आह, अथि नैसर्ग, विवशता
का, उनमें भीषण सूनापन

88
मानव के पाश्चात चर्चा का
देती वह निर्मम विज्ञापन।"  
कवि उस युग की कल्पना करता है, जहां ऊँच नीच का में भूलाकर मानव—समाज, वर्गीय समाज में परिवर्तित हो जाएगा। शोषक और शोषित की सीमा—रेखा समाप्त हो जाएगी –
श्रेणी वर्ग में मानव नहीं विभाजित
धन बल से हो जहां न जन श्रम शोषण,
पूर्ण भव जीवन के निखिल प्रयोजन।"  
वह उस वर्गीय समाज की कल्पना करते हैं जहां –
"मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय मानवता का विकास,
विज्ञान का ज्ञान का अन्वेषण
सब एक, एक सबके प्रकाश।
प्रभु का अन्वंत वरदान तुम्हें,
उपमोग करो प्रतिक्षण नव—नव
व्या कभी तुम्हें है निम्नवन में
यदि बने रह सको तुम मानव।"  
इस मानव को मानव बने रहने में धरती, कला और संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका है। वे 
धरती का मुख देखते हुए कहते हैं –
ताक रहे हो गगन?
मृतु — नीलमा — गगन गगन?
अनिवेश, अविगतन, काल—नयन?
निस्वयं शून्य, निरजन निस्वन?
देखो भू को!
जीवन प्रेमू को!
हरित भरित
पल्लवित मरमित
कुजित गुजित
कुसुमित
भू को।"
मार्क्सवाद की भांति पत्त व्यक्तिवाद के संकुचित बंधनों की अर्थता को तोड़कर समाज के उन्मुक्त वालावरण में सांस लेने के समर्थक हैं। उन्होंने कहा है — "प्रगतिवाद का लक्ष्य ही उस समाज की स्थापना है जिसमें व्यक्ति और समाज के पार्थक्य की रेखा न होगी। उस वैयक्तिक अनुभूति का क्या महत्व है, जो व्यक्तित्व को सर्वप्रथम बनाकर समाज के लिए अपरिवर्तित रह जाती है?"" अब कवि प्रकृति के स्थान पर मानव को प्रतिष्ठित करते हुए उसके सोन्दर्त को सर्वांतम धोखित करता है —

सुन्दर है विहंग, सूमन सुन्दर,
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम!४५

कवि की दृष्टि ग्रामीणों की आंखों में दूर तक झूली है। ग्रामीण जीवन का चित्रण करते समय कवि का हुदाय समस्तिगत भावनाओं से परिपूर्ण है। उसका हुदाय कभी गांवों के दरिद्र, निराशा, हताशा आदि को देखकर विकल हो उठता है तो कभी उनका हर्षील्लास देखकर प्रकृतित। 'युगवाणी' की 'दो लड़के' कविता में कवि इसी विचारधारा से अंत:प्रेरित है —

मेरे आगन में (टीले पर है मेरा घर)
दो छोटे—से लड़के आ आते हैं अकसर।
नंगे तन, गदबद़े साँवले सहज छबीले,
मिट्टी के मटमेले फुतले पर फुरीले।

x x x

सुन्दर लगती नगर देह, मोहती नमनन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापान,
मानव के ही बालक हैं यह पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव सोचिये में ढाले सच्छे!४६

'संसार, इतिहास और समाज की जैसी व्याख्या साम्यवाद (मार्क्सवाद) करता है वैसी ही व्याख्या पंत भी करते हैं। संसार को सत्य मानना, सामूहिक दृष्टि से सब कुछ सोचना,
पूंजीवाद को सब प्रकार के कथनों के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए उसे मरणासन्न धोखित करना, हम्हाम्हक तक रणनीति से काम लेना; साम्यवादको साथ स्वर्णयुग का पदार्पण मानना आदि उनके काय का प्रमुख विषय है। 'भूतवाद' की व्याख्या पंत इन शब्दों में करते हैं —

कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का तत्वावधारण —
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अन्तर दर्पण।

x x x
राष्ट्र, वर्ग, आदर्श, धर्म, गत रीति नीति और दर्शन स्वर्ण पाश है : मुक्ति योजना सामूहिक जन जीवन।”

साम्राज्यवाद और पूंजीविदों की निदान कवि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से करता है –

मुखियों के कुलपति, सामंत, महान्तों के वैभव क्षण
बिला गए राजतंत्र – सागर में ज्यो बुद्ध-बुद्ध कण !
राजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनों में शोभन
पूंजीवाद निशा भी है होने को आज समापन।

इसी साम्राज्यवादी दृष्टि के कारण कवि दूसरी तरफ किसानों और मजदूरों की प्रशंसा भी
करता है। जहां कृषक की तारीफ में वह कहता है –

युग-युग का वह भारवाह, आकांत नत मस्तक,
निखिल सत्य संसार पीठ का उर के स्फोटक !

कर्षक का उद्दार युथ इच्छा है कलित
सामूहिक कृषि काय-कल्य, अयाता कृषक भूत !

वहीं एक श्रमजीवी का धिक्कार इस प्रकार करता है –

वह पतंत्र है ! वह जग के कर्म से पोषित,
वह निर्माता : श्रेणि, वर्ग, धन, बल से शोभित !

लोक कर्म का अग्रदूत, वर वीर जनादृश्य
नया सम्पत्ता का उन्नायक, शासक शासित।

कवि गाँव के व्यापक जीवन पर भी अपनी पैनी नजर डालता है। गाँव का एक पक्ष
जहां स्वस्थ्य एवं प्राकृतिक है वहीं दूसरा पक्ष दारिद्र, अज्ञान रोग और करार से परिपूर्ण
है। कवि ने दोनों पक्षों को अपने कायम में व्यापार स्थान दिया है। प्रथम पक्ष में तम कवि
की 'धोखियाँ का नृत्य', 'काहारों का कठनात्मक', 'वमाओं का नौंच', 'संध्या के बाद', 'ग्राम श्री',
'ग्राम मुक्ति', 'नहर' आदि रचनाओं को शामिल कर सकते हैं। स्वस्थ्य, रोमांस एवं आनन्द
से पूर्व ग्राम जीवन का एक उदाहरण 'वमाओं का नाच' में देख सकते हैं –

अरार ...
मचा खूब हुल्लड़ हुल्लड़
धरण धराधम रह गृंदग
उछल कृद, बकवाद झाड़प में
खेल रहिय खुल हृदय उमंग
यह चम्बर चोदस का झंग।"19

इसी ग्राम का दूसरा रूप ऐसा है जोहाँ कुश्चि मिलाने को अन्न नहीं, शरीर ढकने को वस्त्र नहीं, रक्षा पाने को घर जैसा घर नहीं। नर-नारी रुढ़ियों में बंधे हुए हैं। ऐसे पक्ष का चित्र भी कवि यथार्थ रूप से उकसाताहै। 'ग्राम चित्र' का यह रूप देखने योग्य है –

यहां खर नर (बानर ?) रहते युग-युग से अभिशापित
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य, निरुभा, पंक में पालित।
यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम, – सम्पत्ता, संस्कृति से निर्भरित।20

मार्कसवादियों की तरह पंत जीवन के मैतिक समृद्धि हेतु 'यंत्रों' की आवश्यकता पर बल देते हैं –

जड़ नहीं यंत्र : वे भाव रूप : संस्कृति द्वारक;
वे विवेध शिरारे, मिठल संपत्ता के पोषक।
रेडियो, तार और फोन – वाष्प, जल, वायुयान,
मिट गया दिशा विधि या जिनसे व्यवस्थान मान –

जीवन सौन्दर्य प्रतीक यंत्र : जन के शिकार;
युग क्रांति प्राप्तिक और भारी के पथ दर्शक।21

मार्कसवादी विचारों से पंत का न केवल भाव जगत एक नवीन रूप धारण कर लेता है वरन्
उनका कला जगत भी परिवर्तित हो जाता है। अब पंत का छायावादी शिल्पी रूप तिरोहित
हो जाता है। प्रतीकों की गतोहता और शैली की लक्षणिकता का वैभव यहाँ नहीं मिलता।
यहां शैली की सहजता से दृष्ट्व्य है। 'बांट' कविता का यह उदाहरण –

बांट को देखा! 

वच्चों की निगरानी करती
लड़ती अरि से तनिक न डरती
दल के दल सेना सबारती
घर आंगन जनपथ बुहारती।"24
प्रगतिशील पंत का प्रकृति वर्णन भी अब सरल एवं सहज हो गया है। मानवीकरण,
प्रतीकात्मकता की गहनता से वह उलझा नहीं है। 'ग्राम श्री' इसका एक प्रमाण है—

'रोमानित—सी लगती दशुधा,
आई जो गहेंँ में बाली,
अरहर सनई की सोने की,
किनकिनियों हैं शोभाशाली।'३९
अरविन्द दर्शन और पंत काव्य

आज का युग वैज्ञानिक और विकासवादी है। इस विकासवादी अवधारणा के अनुसार प्राणसत्ता (Life) का विकास जड़तल्व (Matter) से हुआ है। कालांतर में प्राणसत्ता वातावरण के प्रभाव से अनेक उच्चतर जीवों में परिवर्तित हुआ। मानव इस क्रम का सर्वोत्तम विकास है। इसके विपरीत अरविन्द कहते हैं कि 'यदि प्राणसत्ता का विकास जड़तल्व से हुआ तो प्राण यह उठता है कि आखिर प्राणसत्ता आती कहां से है और वह जड़तल्व में क्यों प्रवेश कर जाती है? यहीं नहीं वे यह भी पूछते हैं कि यदि जीवन-विकास का मानव सर्वोत्तम विकास है तब यह प्राण स्वभावत: ही उठ खड़ा होता है कि जीवन-विकास का (मानव के बाद) अगला स्रोत क्या है? इस संदर्भ में अरविन्द का मानना है कि 'प्राणसत्ता' में ही जड़तल्व सम्भव है। वे यह भी मानते हैं कि जड़तल्व, प्राणसत्ता और मनसा चेतनाओं से भी व्यापक एक मौलिक चेतना है जो सबको नियंत्रित कर रही है। अरविन्द इसे मूलचेतना (मान) का नाम देते हैं। उनके अनुसार प्राणसत्ता (Life) मूल चेतना का ही आदर्श रूप है।

अर्थात् मूल चेतना (मान) ही प्राण सत्ता का रूप धारण कर लेता है। अतः मूल चेतना और जड़तल्व में विरोध नहीं।

मूल चेतना (मान) जब निम्न गति को स्वीकार कर जगत के रूप में बदलता है तो सर्वप्रथम ऊर्ध्व-चेतना या अतिमानस (Supermind) की स्थिति आती है। यह ब्रह्म की शक्ति की पवित्र स्थिति है। अभी सीमित अहं का संयोग इसमें नहीं हुआ। इसके पश्चात् जब ब्रह्म अपनी शक्ति से 'मन' के रूप में बदलता है तो उसमें व्यविज्ञात सीमित अहं का संयोग हो जाता है। यह अहं ही सारे दुःखों का कारण है। इससे ऊपर उठे विना अतिमानस की स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती। मन के पश्चात् ब्रह्म 'प्राणसत्ता' व 'जड़-जगत' के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है। यही ब्रह्म का निम्न दिशा (जगत) की ओर विकास है --

\[
\text{ब्रह्म} = \text{मूल चेतना (विशुद्ध स्थिति)}
\]

\[
\text{ऊर्ध्व-चेतना या (Supermind) (पवित्र स्थिति अतिमानस)}
\]

\[
\text{मन या चेतना (mind) = (सीमित अहं का संयोग)}
\]

\[
\text{प्राण सत्ता (Life)}
\]

\[
\text{जड़तल्व (matter)}
\]
अरबिन्द का मानना है कि मनुष्य ने मन या चेतना को विकास के दौर में प्राप्त कर लिया है। परंतु चेतना के विकास की मूलमूल तत्त्वेत्व को विश्लेषण और हृदयगम्य न कर पाने के कारण जानता ही नहीं कि मानसिक चेतना के आगे क्या है? बे कहते हैं कि यद्यपि मस्तिष्क (mind) मनुष्य के लिए सबसे बड़ी शक्ति है तदापि हमारा मनस तंत्र शरीर या भौतिक जगत और आत्मानिक सत्ता के बीच सेतु नहीं बना सकता। क्योंकि मस्तिष्क ज्ञान का समुचित नहीं। मनुष्य का मस्तिष्क (mind) प्रायः शरीर की क्रियाओं, प्राण की आकांक्षाओं और मन की आहदमन्वता में पूरी तरह सिपाता हुआ है। उसने अन्यायसव इन्हीं के द्वारा प्राप्त संवेदनाओं में जीने की आवश्यक छाल ली है। चूंकि मस्तिष्क अपनी अत्यांतिहित सीमा के कारण कम ही सत्य का पूर्ण साक्षात्कार कर ही नहीं सकता, इसलिए अर्द्धसत्यों को बटोर-बटोर कर उसने अहं की तुषिक के लिए रूचि, धारणा, आदर्श, मूल्य आदि के मिश्रण जाल बनाकर उसी में अपने को आवब्द कर लिया है। परिपात्यरूप वह शांति पाने की अपेक्षा बेदेनी और अस्थिरता का शिकार होता चला जा रहा है।

सवाल यह है कि क्या मनुष्य इन बंधनों से उपर उठकर अतिमन्वानिक सत्ता तक पहुँच सकता है। अरबिन्द कहते हैं कि ‘आवरण-विवरण प्रक्रिया’ यह कार्य संभव है। यह प्रक्रिया ‘चैत्य पुरुष’ से शुरू होती है। यह चैत्य पुरुष ही शरीर, प्राण और मन के स्तर पर कार्य करने वाली चेतना का आधार है। उनके अनुसार चैत्य पुरुष वृद्ध और पवित्र आगिन्तिक है, और यह गहराई से सत्य, शिवंग, संदर्भ के प्रति जागरूक भी है। परंतु चैत्य पुरुष तब तक उपनिवेशित नहीं हो सकता जब तक हम आंतरिक रूप से शांत नहीं होते। हमारा मन भौतिक और मानसिक रूप से गढ़-गढ़ है। भौतिक वृत्तियों ने हमारे मन को अस्थिर बना रखा है, जिससे जीवन में तनाव, निराशा और अस्थिरता व्यक्त है। ‘पूर्ण योग’ से हमें आंतरिक शांति मिल सकती है। पूर्ण योग के माध्यम से जब हमारा मन शांत होकर भौतिक वृत्तियों से विमुख होने लगता है तब चैत्य पुरुष का सिद्धासन जाग्रत चेतना की ओर उठने लगता है। यह धीरे-धीरे और अधिक सक्रिय तब होता है जब व्यक्ति में पूर्ण आंतरिक दिव्य सत्य को पाने उसके अनुकूल जीवन को ढ़ालने की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है। चूंकि मनुष्य पूर्ण रूप से इस मनोवैज्ञानिक परिवर्तनों के लिए तैयार नहीं इसलिए अतिमन्वान अपने आवरण से मानव चेतना के आवरण हेतु मार्ग दर्शक बनता हैं। ताकि उसकी सहायता से धीरे-धीरे सभी स्तर के जीवन का पूर्ण और तही प्राप्त हो सके। इस प्रकार अतिमन्वानिक आवरण एवं मन का आवरण से मानव का उत्तरोत्तर विकास होने लगता है। इस स्थिति के बाद पुन: अतिमन्वान की ओर आवरण हेतु मार्ग दर्शक बनता है जहां पहुँचने के बाद चेतना के अभिलाषा आ जाती हैं। तत्परता सत्य, ध्यान, आनंद की प्राप्ति निर्धारित हैं। इस प्रक्रिया को एक संध्यागत्र के माध्यम से इस प्रकार समझ सकते हैं —
अरबिंद के इन मान्यताओं (दर्शन) से अपने काव्य का अन्तर्संबंध स्पष्ट करते हुए पंक्ति लिखते हैं — “अपनी अनुभूतियों के लिए, जिन्हें मैं अपनी सृजन चेतना का स्वाभाविक या काल्पनिक अवरोधण समझता था, मुझे किसी प्रकार के बीचक तथा आध्यात्मिक अवलम्बन की आवश्यकता थी। इन्हीं दिनों मेरा परिचय श्री अरबिंद के ‘भगवत जीवन’ (दि लाइफ डिवाइन) से हो गया। उसके प्रथम खण्ड को पढ़ते हुए मुझे ऐसा लगा, जैसे मेरे अस्पष्ट स्वभाव चिंतन को अत्यंत सुस्पष्ट, सुसंगठित एवं पूर्ण दर्शन के रूप में रख दिया गया है। ‘स्वर्ण किरण’ और बाद की रचनाओं में यह प्रभाव मेरा सीमांक के संबंध, किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है ... मैं अपने युग, विशेषतः देश की प्रायः सभी महान विमृति से किसी न किसी रूप में प्रभावित हुआ हूँ। ‘योगा’ – ‘पत्त्व’ – काल में मुझ पर कयून्द रविवर्त तथा स्वामी विवेकानंद का प्रभाव रहा, ‘यूगान्त’ और बाद की रचनाओं में महात्मा जी के व्यक्तित्व तथा मार्क्स के दर्शन का।... किंतु इन सब में जो एक परिपूर्ण एवं संतुलित अंतर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्ति मुझे श्री अरबिंद के जीवन दर्शन में मिली; और इस अंतर्दृष्टि को मैं इस विश्व संक्रांति-काल के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूँ।”

स्पष्ट है कि ‘स्वर्ण किरण’ और ‘स्वर्ण धूलि’ तथा उसके बाद की रचनाओं में यह दर्शन किसी न किसी रूप में विद्यमान है। अरबिंद ने मानव (ब्रह्माण्ड) की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए यह माना है कि जड़ में ही चेतना विद्यमान है और यह चेतन परम चेतना का ही अंश है। जिसे वे ‘मातृ-सत्ता’ मानते हैं। पंक्ति भी इसे उसी रूप में विषयित करते हैं –

तुम सृजन शक्ति, जो ज्योति-घरण धर
रंजत बनाती रंजक को,
जड़ में जीवन, जीवन में मन
मन में सकारात्मक स्वरूप को।

जड़ और चेतन को एकत्र मानने के साथ ही साथ पंत यह भी मानते हैं कि जगत सत्य है और वह परम चेतना (भ्रम) का ही अंश है। यह जगत दुःखमय और मिथ्या इसीलिए प्रतीत होता है कि हमें उस चेतना के शान ही नहीं है। पंत अरविद का भाव 'चेतना' का मेद करते हुए बताते हैं कि धरती पर जो दुःख और बर्बरता है वह अवचेतन या उपचेतन के कारण है –

धरती का निस्तल अवचेतन उगड़ रहा है
बर्बर युग के आवेशों से आंदोलित हो,
जन जीवन की कृत्रिम विषमताओं में फिर से
नवयुग का मांसल समय भरने जन वाचित।

जीवन की समस्त विषमताओं के पीछे अवचेतन का ही संचालन है। विश्व युद्धों का कारण भी यही है –

अव चेतन की कुंडाओं से
मर्दित प्रच्छन्न मनुष्य मन,
दो दारुण विश्व कणों से
केंद्र युका ध्वस्त भू प्रांगण।

पंत कहते हैं यद्यपि अवचेतन हमारी चेतना का ही प्रच्छन्न अंश है। पर हम अतिशय भौतिकता के कारण उससे अनमित्र रहते हैं। इसीलिए गतिरोध कहां है हम समझ ही नहीं पाते –

हंदय समर्पण करना तुमको इष्ट न था,
इसमें इनका दोष नहीं है : अव चेतन की
प्रबल शक्ति से ये संसार अनमित्र रहे हैं।

अरविद के अनुसार मर्शिफ मनुष्य की सबसे बड़ी शक्ति है पर हमारा मानस तंत्र शरीर, भौतिक जगत और अतिमानसिक सत्ता के बीच सेतु नहीं बना सकता। क्योंकि वह अन्ततः हमारे शरीर के बेड़ियों ने बढ़ है। यह देख – मन की सीमा ही हमारी विश्व सम्यता के व्हास का कारण है –

देख रहा में, विश्व सम्यता
आज देख मन ही में सीमित
हंदयहीन मानवता जाती
अन्ध गति की ओर प्रभावित।
मनुष्य की इस सीमित सत्ता में ‘आत्मा’ बंदी है। मन की सर्वांच्छ सत्ता को ठीक से न समझ पाने के कारण भेद-बुद्धि में रहते है। इसीलिए अर्थ सत्यों को बटोर-बटोर कर उसने अहं की तुष्टि के लिए, रूढ़ि, धारणा आदर्श आदि के मिथ्याज्ञात बनाकर उसी में अपने को आबद्ध कर लिया है। यही अहं की धूल ही प्रज्ञा की लाखों को अंधा किए देने रहता है।

देह, प्राण, मन में बंदी कर दिव्यात्मा को,
भेद बुद्धि से शोषण कर हृदयदम ज्योति का,
जरा मृत्यु पंजों में निर्जर को दबोच कर अहं धूलि से अंधा कर आलोक बक्षु को।

इन बंधनों से ऊपर उठकर अतिमानस तक पहुँचने का प्रस्थान बिन्दु अविनंद ने चैत्य पुरुष को माना है। इस चैत्य रूप को पंत ने उपनिषद के आधार पर ‘अंगुष्ठ मात्र निर्दूम ज्योति विति’ रूप में वर्णित किया है और उससे मन प्राण को शासित होता माना है।

अंगुष्ठ मात्र निर्दूम ज्योतिवत्व वह स्थित
उस शुभ पुरुष से देह प्राण मन शासित।

पंत की मन का चैत्यकरण आवश्यक मानते हैं। वे कहते हैं –

चैत्यकरण मन का आवश्यक
मृत्यु बोध हो सके सूक्ष्म विकसित।

वस्तुतः चैत्य ही अन्तर-द्वार है जहां प्राण, मन, देह निहटते हैं।

जीवन जीवन के वस्त्र उतार,
प्राण नर खोले अन्तर द्वार,
प्राण मन (यह भू संस्कृति पीठ।)
देह से निकह करे अभिसार।

चैत्यकरण के बाद चेतना का विकास प्रारंभ होता है। इस चेतना के कई स्तर हैं। पंत भी इन स्तरों को स्वीकार करते हैं। तभी तो वे कहते हैं –

स्तर पर स्तर पार चेतना के, योगेश्वर
स्वर्गवटन से नवयोदित तुम चिदाकाश पर!
मानव के ईश्वर, ईश्वर से मानव बन कर
आए पौल्ट धरा पर, ले नवजीवन का वहाँ।
यद्यपि आरोहण आसान नहीं है, दुर्गम और असिपथ है, फिर भी धरती के स्वर्ग को छूने की इच्छा इसी रास्ते से जाती है। और यदि एक बार वहां पहुँच गए तो जड़ का अंधकार चैतन्य में परिणत हो उठता है —

इन्द्रिय मन को अतिक्रम कर
वह हो धूका अवरोहण,
उन स्वर्गिक श्रृंगार में जगा
जड़ तम हो उठता चेतन।”

इस आरोहण से परिदृश्य ही बदल जाता है। ‘किंतु नम की शान्ति में धरती का क्रंदन ‘सुनहरी झंकारों’ की स्वर संगति में परिणाम हो जाता है। मानस—जीवी मनुष्य ही देवता बन जाता है —

ज्यों—ज्यों आरोहण करता मन मौन शान्ति में
धरती का क्रंदन ही ऊपर स्वर संगति पा
बन जाता संगीत सुनहरी झंकारों का !
मानव ही सूर में परिणत हो जाता उठकर।”

कवि मानता है कि मानव अभी इस आरोहण के लिए पूर्णतः तैयार नहीं है। अतः प्रेमक शक्ति के रूप में परम चेतना (अतिमानस) का मानव यथितत्व में अवतरण (अवरोहण) होता है। अतएव दिव्य जीवन के लिए दो प्रक्रियाएँ अविभाज्य हैं। अवतरण में एक प्रकाश उत्तरता है और निम्नतर सत्ता (मन, जीवन और शरीर) को स्पर्श करता है जिससे आनंद या आकृतिक आह्लाद का एक प्लावन आता है। पंत इसे ‘आत्मा का अवतरण’ कहते हैं जो ‘अंतर आशा से परिपूर्ण है —

जीवन के स्वर्गिम वैभव पर
आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व के मुख मंदिर पर
शाश्वत अंतर आशा—शामिल।”

सुख्म शक्ति के अवतरण से अंधकार में प्रकाश उत्तर आता है, देवता मानव तन धारण कर लेते हैं, लोक चेतना में धरती और स्वर्ग का परिस्थित्य होता है —

अवतरित हो रही सुख्म शक्ति
फिर मौन गुजरित उर अन्मय।
बंधता प्रकाश तन बाहों में
सूर मानव-तन करते घारण
फिर लोक चेतना रंग भूमि
भू-स्वर्ग कर रहे परिश्रमण।

जीवन के जड़ता के स्तर पर चैतन्य के अवतरण से पूर्ण सत्य की उपलब्धि होती है। सत्य
अखण्ड होकर मूर्तिमान होता है —

जीवन के स्तर पर जड़ भू पर
उतर रहा चैतन्य अन्तर्गत
महामाय से, ब्रह्मचर्य से
पूर्ण सत्य यह, मूर्त अखण्डता।

अवतरण की पूर्ण सार्थकता भविष्य में स्वर्ग की प्रतिष्ठा करने में है। यही अरविन्द का
‘दिया जीवन’ (Life Divine) है —

शुभ्र पीति अमरत्व सार अक्षय
जीवन स्तर पर जीवन का रोहण,
स्वर्ग अवतरण यह अव कर्म पर
जन भू का कर सकती संरक्षण।
दार्शनिक विचारधाराओं की काय्यात्मक परिणतियां

पंत मुलत: कवि हैं, विचारक या दार्शनिक नहीं। एक कवि दार्शनिक और धार्मिक सत्य को कल्पना की मधुमयी भूमि पर स्वीकार करता है। इस कारण हमें गांधी, मार्क्स, हीगल, शंकर, अरविंद आदि दार्शनिकों तथा कवि पंत की विचारधाराओं की अभिव्यक्ति में मूलभूत अंतर मिलेगा। वैसे भी काव्य और दर्शन के संस्कार एवं स्वरूप में अंतर होता है। कविता न तो दर्शन ही सकती है और न ही दर्शन कविता। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर ही हम पंत काव्य के साथ न्याय कर सकेंगे।

पंत की काव्य यात्रा के प्रमुखत: तीन सीण्ण हैं। ‘वीणा’ से लेकर ‘प्लर’ काल तक की रचनाओं में कवि कल्पना के पंख पर सवार होकर वस्तु जगत के सुन्दर पक्ष पर ही आकर्षित दिखाई पड़ता है। इस काल में कवि के मनोभावों के बारे में डा. नगेन्द्र लिखते हैं — “प्रकृति के विस्तार संगमर्थ पर इनकी सौन्दर्यमयी दृष्टि पल्लव, वीणा जाल, मधुपुरुषी किरण, चांदनी, अक्षर, संध्या, ज्योत्सना, छाया, इंद्र, सुभम, तारिकाएं आदि पाठों का ही अभिनय देखते हैं या देखना चाहती हैं। दिगन्त व्यापी उल्कापात बांधकर, भूकंप आदि में इनकी दृष्टि नहीं रहती।” परस्तु प्रकृति के कवि की यह सौन्दर्य भवना और मोह सदैव नहीं रहता है। ‘युगान्त’ तक आते-आते समाज के पूजीवादी अत्याचारों से विकृत सामाजिक शरीर और मन की दीन-हीन दशा का पंत के संवेदनशील कवि पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनकी ‘कल्पना के रंगीन पंख’ जल गए और विवेक होकर उन्हें एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती’ पर उतरना पड़ा। इस परिवर्तन की आवश्यकता की ओर इंगित करते हुए पंत के — रूपाम (1930) में लिखा है — “कविता के स्वरूप भवन को छोड़कर हम इस खुरदरे पथ पर कहाँ उतर आए ? इस संबंध में भी दो शब्द लिखना आवश्यक हो जाता है। इस युग में जीवन की बारतविकता ने जैसे उग्र आकार धारण किया है। उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा-अवकाश में पलने वाली संस्कृति का बातचीत आंदोलित हो उठा है, और काव्य की स्वरूप-विज्ञान आत्मा, जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नगर रूप को देखकर सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्मरण में नहीं पल सकती। उसकी जड़ें को अपनी पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है और उस युग जीवन ने उसके चित संघित सुंदर स्मरण को जो चुननी दी है, उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।”

इस व्याख्या के ध्यानपूर्वक पर आने के लिए कवि को मार्क्स का इंद्राल्पक दर्शन प्रेरित करता है। युगान्ती और ग्राम्य इसी दौर का प्रतिनिधित्व करती है। परस्तु पंत ने मार्क्सवाद
प्रमाणवाद के उसी रूप को प्राप्त किया है, जिसमें कि उसका श्रेयस रूप अवतरित हुआ है। वे प्रमाण को मार्क्वसेन विचारों से प्रेरित उन्नति मात्र नहीं मानते वरन उसको व्यापक रूप में देखने का पक्षपात है। ‘उत्तरा’ की भूमिका में प्रामाण्यवाद पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा है — ‘हमारे कलाकार प्रामाण्यवादक विचारक प्रामाण्यवाद को वर्ग युग्म की भावनाओं से संबंधित साहित्य तक ही सीमित रखना चाहते हैं; उन्हें इस युग की अन्य सभी प्रकार की प्रमाण की धाराएं प्रतिक्रियात्मक, पलायनवादी, सुधार व जागरणवादी तथा युग्म नीति से पीड़ित दिखाई देती हैं। वे आलोचक अपने सांस्कृतिक विचारों में मार्क्वसेन वादी ही नहीं, अपने राजनीतिक विचारों में कम्युनिस्ट भी हैं।’79 पंत प्रमाणवाद को और स्पष्ट करते हुए कहते हैं — ‘रैले सभी युग्मों का लक्ष्य सदैव प्रमाण की ओर ही रहा है। पर आधुनिक प्रमाण ऐतिहासिक विज्ञान के आधार पर जन समाज की सामूहिक प्रमाण के सिद्धांत का पक्षपात है इसमें संदेह नहीं कि मनुष्य का सामूहिक व्यक्तित्व उसके वैयक्तिक जीवन के साथ की सम्पूर्ण अंशों में पूर्ण ही नहीं करता। ...किन्तु इसमें संदेह नहीं कि एक विकसित सामाजिक प्रथा का परम्परा के सौहार्द और सदभावना की वृद्धि के कारण व्यक्ति के निक्षेप सुखों-दुखों पर भी अनुकूल प्रभाव ही पड़ सकता है और उसकी प्रतिभा एवं विशिष्टता के विकास के लिए उसमें कहीं अधिक सुविधा मिल सकती है।’80

पंत की यह धारणा स्पष्ट रूप से देती है कि वह मार्क्वसेन वाद के सामाजिक दर्शन की ओर बड़े औजपूर्ण ढंग से खिचे थे। इसलिए युग्माणी में कवि पूर्णता और मानव के हाथ में पूर्णता की पराजय घोषित कर, मानव की प्रतिष्ठा करता है —

| हार गयी तुम   |
| पूर्णता          |
| रच निरूपम       |
| मानव कृति      |
| निखिल रूप, रेखा, स्वर |
| हुए निकायर     |
| मानव के तन मन पर। |

कवि के इस भाव बोध ने मानव जीवन को उत्प्रे के उच्चतर और सुन्दर से सुन्दरतम बनाने की ओर उम्मीद किया। इसके लिए पंत गांवों की ओर लोटने की तात्त्विक नहीं करते वे गाँव को स्वर्ग भी नहीं कहते और न ही गाव का चित्रण आदिवासी की शैली में करते हैं। इसका सीधा सा कारण है कि वे गांव की रूढियों, कृतियों, अंचलविवाहों, वर्तमान समयों, कुरांकरातों आदि से गहरे परिचित हैं। इसलिए वे गांव का दोहरा विकास चाहते हैं। वे विज्ञान की
मदद से गांवों की बाहरी और कला के अनुशीलन से उसके आन्तरिक जीवन को विकसित करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि वैज्ञानिक अनुसंधानों से लाभान्वित हो लोग अपने जीवन को भौतिक समृद्धि से परिपूर्ण करें।

जड़ नहीं दंत्र! वे मावँ रूपः संस्कृति द्वारकः

वे विश्व शिराए निकहल समयता के पोषक

परन्तु इसका यह आशय केदानी नहीं कि पंत भौतिक समृद्धि को ही सब कुछ मानते हैं। वे विज्ञान की शक्ति से परिपूर्ण हैं। उसकी वकालत भी करते हैं पर विज्ञान के माध्यम से भी अपरिचित नहीं हैं।

मानव ने पायी देशकाल पर जय निश्चचः
मानव के पास नहीं मानव का आज हृदयः
चाहिए उसका विज्ञान ज्ञानः वह नहीं पाइतः
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गयी विज्ञानः।१०२

इसी लिए वे बार—बार समझाते हैं—

राजनीति का प्रस्त नहीं रे आज जगत के समुखः
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुखः
आज वृहत सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थितः
खड़ मनुष्यता को युग—युग ही होना है नव निर्मित।१०३

पंत पर अर्थ साम्य और वर्ग साम्य से हटकर सांस्कृतिक साम्य की बात ऐसे ही नहीं करते हैं। जिस समय पंत मार्क्स का प्रभाव पड़ा था उसी समय गांधी ने भी उन्हें अपनी ओर आकृष्ट किया था। यद्यपि ये दोनों विचारधाराएँ एक दूसरे के विपरीत हैं, क्योंकि मार्क्सवाद जहां भौतिक संघर्ष के प्रति आस्थावाद है वहाँ गांधीवाद दीक्षित उसके विपरीत है; गांधीवाद मानवतावादी दर्शन है जो भौतिक संघर्ष की अपेक्षा भौतिक संघर्ष में अधिक आस्था रखता है, मार्क्सवाद वर्ग युद्ध अथवा सामाजिक क्रांति का पश्चातार है वहाँ गांधीवाद युद्ध और क्रांति की अपेक्षा समझौते की भावना को अधिक प्रभाव देता है, तदापि पंत ने इन दोनों के प्रभाव को स्वीकार किया है। पंत ने इन दोनों विचारधाराओं से केवल उन्हें तत्त्वों को अपने कायम का विषय बनाया है जो भारतीय जन मानस को हददयगन्मण्य था। पंत ने मार्क्सवाद के जननिति और सर्वहारा वर्ग की कल्पना को स्वीकार किया है पर वर्ग संघर्ष उन्हें स्वीकार नहीं था। वे मार्क्स के ऐतिहासिक भौतिकवाद को भी स्वीकार नहीं करते। वे मार्क्स के क्रांतिकारी रूप को किंचित रूप में भारतीय दृष्टि के आधार पर स्वीकार करते हैं पर एकाधर
सिद्धान्त के रूप में नहीं। वे उसको (मार्क्सवाद को) केवल रक्त क्रांति और वर्ग युद्ध के सीमित दायरों में बंद करने के पक्ष में नहीं हैं। वह आज की राजनीतिक समस्या को इतना महत्व नहीं देते जितना सांस्कृतिक विकास द्वारा विश्व मानवता अथवा लोक मानवता के प्रश्न को। इसीलिए पं. भूतान द्वारा आध्यात्म का साधन मानते हैं। कवि के लिए भूतान अपने आप में एक साधन है साध्य नहीं। मार्क्स जिन शोधितों के उद्दार का मानवीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है कवि ने उसे महात्मा गांधी के प्रकाश में स्वीकार किया है। मार्क्स का अध्ययन और गांधी का व्यक्तिगत जीवन कवि के ऊपर एक साथ प्रभाव डालते हैं। जहां कहीं कवि ने दोनों में साम्य देखा वहीं उसने दोनों को एक साथ स्वीकार किया। किन्तु विभेद की स्थिति में कवि स्वयं अंतःविरोध में फंस जाता है। उसे एक और जहां मार्क्स की लोकभाषा पर्यंत है वहीं दूसरी ओर गांधी का आध्यात्मपर्यवेक्षण विचारधारा भी। इसीलिए जहां एक ओर कवि यह स्वीकार करता है कि मार्क्स की चेतना ने इस जीवन को नवीन प्रकाश दिया है —

दिगदिगम्बर में व्याप निकल युग का घर गौरव हर,
जन सांस्कृति का नव विराट, प्रासाद उठेगा भू पर
डॉल गार्ड। लिए तमच्छल पृथ्वी के उदय शिखर पर
तुम तिनेत्र के जान चक्कु से प्रकट हुए प्रलय कर।

वहीं दूसरी ओर गांधी को युग पुरूष मानकर उनसे वैज्ञानिक अंधमार्ग और आध्यात्मिक विवास—मार्ग के विषय पर प्रश्न करता है और अंततः: गांधीवाद में ही अपनी आस्था व्यक्त करता है —

चरमोन्नत जग में जब कि आज विज्ञान, ज्ञान।
बहु भौतिक साधन, यंत्र यान, वैविध्य महान।।
सेवक हैं विद्युत वाष्प—शक्ति, धन, बल नितांत।
फिर क्यों जग में उल्पीड़न ? जीवन यो अशांत।।

और अंततः: वह कहता है —

बापू ! तुम में आज लगे जग के लोचन।
तुम खाल नहीं जाओगे मानव के बंधन।

वहीं नहीं 'युगान्त' में कवि जहां निष्प्रार्थ प्राणीनता को समाप्त करने हेतु 'डुल झरों जगत के जीर्ण पत्र' की कामना करता है वहीं उसी संस्कृत में 'बापू के प्रति' कविता लिख बापू की प्रशांता के साथ—साथ गांधीवाद की भी प्रशंसा करता है। वह गांधी को अथवा गांधी के
दर्शन को ‘भावी संस्कृति’ के समासीन होने के लिए अमर आधारशिला मानता है। उसका विश्वास है कि भावी मानवता का निर्माण सत्य-अहिंसा के ताने बाने से होगा –

‘बनेगा सत्य अहिंसा के ताने-बानों से मानवपन।’

परन्तु ‘ग्राम्य’ में आकर कवि का यह विश्वास हट जाता है। यथार्थ की कठु भूमि पाकर कवि पूर्ण पुरुष की सत्य-अहिंसा को विस्मृत कर देता है और इसी ‘मुक्त पुरुष’ की पराजय दिखाता हुआ कहता है –

हे भारत के हृदय। तुम्हारे साथ आज नि:संशय
चूर्ण हो गया विगत सांस्कृतिक हृदय जगत का जर्जर।

कवि निर्वाणोनुसेष्ठ आदर्शों के अतिम दीपशिरोदय गाढ़ी के दर्शन की अवधारित त्रा की ओर संकेत करता हुआ कहता है –

“किए प्रयोग नीति सत्यों के तुमने जन जीवन पर,
भावादर्श न सिद्ध कर सके सामूहिक जीवन हित;
अधीन आत्मक अत्यन्त विश्व, शाखाए सांस्कृतिक पर,
वर्तमान विविध पर ही जनगण का भाव विविध अवलम्बित।”

अतः: पंत ने न सुर्यस्यैन सर्गमुद्र को मान्यता दी और न गाढ़ीवादी सर्ग समझौते को। उन्होंने मार्क्सवाद के वर्ग-संघर्ष में अस्थायी शांति को तो देखा पर स्थायी शांति के दर्शन उसमें नहीं कर सके और इसके ठीक विपरीत यह गाढ़ीवाद के सर्ग-समझौते में सामूहिक विकास के चिह्न भी नहीं देख सके। अतः: उन्होंने दोनों का मान्यता स्थापित करने का प्रयत्न किया। परन्तु गाढ़ीवाद और मार्क्स दोनों ही वर्तमान: इतने अधिक भिन्न दृष्टिकोण को लेकर चले थे जिनका समन्वय किसी भी रूप में असंभव सा था। वर्तमान: पंत इन दोनों दर्शनों की एकागिता से बाकी हो चुके थे। आधुनिक कवि की भूमिका में वे कहते हैं – “मैं आध्यात्म और भौतिक दोनों दर्शनों के सिद्धांतों से प्रभावित हुआ हूं। पर भारतीय दर्शन की साम्यत्कालीन परिस्थितियों के कारण जो एकता परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृष्य जगत एवं ऐतिहासिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विरोध आदि की सामना जिसके उपसंहार मात्र है) और मार्क्स के दर्शन की पूर्णवादी परिस्थितियों के कारण, जो सर्ग हृदय और रक्त क्रांति में परिवर्तित हुई – ये दोनों परिणाम मुख्य सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।”

विचारों के इस संक्रांतिकाल में पंत ने ‘श्री आरविन्द का The Life Divine (भागवत जीवन) पढ़ा और उससे बहुत अधिक प्रभावित हुए। उत्तरा’ की भूमिका में वे
शिखते हैं — "मेरी पिछली मान्यताएं भीतर ही भीतर ध्वस्त हो चुकी थी और नवीन प्रेरणाएं उदय हो रही थी।... अपनी नवीन अनुभूतियों के लिए, जिन्हें मैं अपनी सृजन चेतना का स्वप्न संचारण या काल्पनिक अवरोधण समझता था, मुझे किसी प्रकार के बाह्य तथा आदर्शात्मिक आवधिक की आवश्यकता थी। इन्हीं दिनों मेरा परिचय श्री अरविन्द के भगवत जीवन (The Life Divine) से हो गया। उसके प्रथम खण्ड को पढ़ते हुए मुझे ऐसा लगा जैसे मेरे अस्पष्ट स्वप्न चित्रण को अवज्ञ, सुमार्गित एवं पूर्ण दर्शन के रूप में रख दिया गया है।... इसमें संदेह नहीं कि श्री अरविन्द के दिव्य जीवन दर्शन से में अत्यंत प्रभावित हुआ है। श्री अरविन्द आचार्य के योगमुक्त (अंत-संगठित) वातावरण के प्रभाव से ऊर्ध्व मान्यताओं संबंधी में अनेक शाकाहार्य दूर हुई हैं। स्वर्ण किरण और उसके बाद की रचनाओं में यह प्रभाव, मेरी सीमाओं के भीतर, किसी न किसी रूप में प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होता है।"

पंत, अरविन्द दर्शन की ओर न तो अवनाक मुड़ जाते हैं और न ही उसे हूँ-बूँ स्वीकार करते हैं। वे उसे उसी सीमा तक स्वीकार करते हैं जहां तक वह हृदयगम्य हो साथ ही साथ वह जहां तक काय केंद्रित रहे और 'युगवाणि' और 'ग्राम्य' के परशुरात 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्णदूसरी', 'उत्तरा' आदि के अस्वाभाविक क्रम में स्वाभाविकता की कड़ी को जोड़ते हुए पंत कहते हैं — इस प्रकार के प्रत्यय मेरी कृतियों में ज्योत्सना काल से प्रारम्भ हो गई थी। ज्योत्सना का स्वप्न क्रांतिवादी (चेतना) ही एक प्रकार से स्वर्ण किरण में सुग्राम प्रभात के आलोक में स्वर्णिम हो गयी है।" यही नहीं वे स्पष्ट कहते हैं — बाहरी दृष्टि से युगवाणि तथा स्वर्ण किरण काय की संस्कृतियाँ में शायद परस्पर विरोधी विचारधाराओं का समावेश मिले पर वास्तव में ऐसा नहीं है।"

वर्तमान: पंत की आर्थिक, आस्तिकता और भावुकता के दृष्टि में देखते हुए 'युगवाणि' और 'ग्राम्य' का स्वर्ण किरण, स्वर्णदूसरी और उत्तरा के रूप में विकास अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। क्योंकि वह जानना चाहता है कि —

क्या यह उंचित कि,
सामाजिक साधारणता
मूल्य व्यक्तिका करे नियंत्रण?
जंगल जीवन ज्वर की जड़ता,
करे मनुष्य आत्मा महानिदित।।

यह प्रश्न इसलिए कि सामाजिक संघर्ष साम्यवाद चेतना का अंत है? पंत कहते हैं — नहीं। वे अरविन्द विकास चेतना की ओर हो रहा है। यह चेतना साधि
भौतिक तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। वर्तुः- मार्क्स का विशेष भी किसी इसीलिए करता है कि वह मन से पर भी कुछ है, ऐसा नहीं मानता। इसीलिए मार्क्स के विचारधारा का प्रतिवाद करते हुए कवि ने व्यक्ति की आत्मसत्ता को स्वीकार किया है, और आत्मसत्ता को ही जीवन की उन्मति का प्रमुख कारण माना है। वह कहता है समाज और व्यक्ति उद्देश्य है केवल भौतिकता के कारण। यह भौतिकता आत्मा से विमुक्त है अतः मानव अपने ही अन्तर व्यापा कोभिन भावनाओं की ध्वनि नहीं सुन पाता। अतः इन दोनों के समन्वय के लिए यह आवश्यक है मानव अन्तर की ध्वनि को सुनने। स्वर्ण काव्य में आकर कवि की यह भावना और अधिक स्पष्ट और सून्दर बन पड़ी है। युगदार्शी और ग्राम्य में चेतना के सामाजिक धरातल के कारण ग्रहित तत्त्वों की प्रधानता परिलक्षित होती है, किन्तु स्वर्ण काव्य संघर्ष पर बन देता है तथा अंतरेतन के विकास की प्रक्रिया देता है। पंडत के विनिवेश की मूल चेतना है कि आध्यात्मिकता के अभाव में मार्क्सवादी भावना अपर्याप्त है और भौतिक रूप के अभाव में आध्यात्मिकता भी छलना हो सकती है। अतः न तो वह केवल चुप रहने की बात करता है और न ही वर्ग संघर्ष की। वह इनमें से बीच का मार्ग, सांस्कृतिक मार्ग अपनाता है। वह कहता है कि मानव की शारीरिक भूख रोटी से मिट सकती है लेकिन इस तत्त्व को असीमित नहीं किया जा सकता कि मनुष्य की आत्मा की भूख के लिए रोटी नहीं, चेतना का उच्च धरातल बाहिर। इसीलिए वे समस्त मान्यताओं का उच्च धरातल पर समन्वय करते दिखते हैं। यह समन्वय मन चाहा नहीं है। एक ठोस धरातल पर आधारित है।

पंडत का विश्वास है कि केवल राजनीतिक और आर्थिक आंदोलन से मनुष्य का भावी जीवन मुख्य नहीं रह सकता और मार्क्स की पहुँच वर्ग विषयकता को मिटाने वाले राजनीतिक और आर्थिक चिऩ्तक के रूप में अधिक है। पंडत वर्गीय समाज के लिए आंतरिक उन्मति को आवश्यक समझते हैं। वह यह मानते हैं कि भारत में अभी मानवता का युद्ध होना शेष है क्योंकि व्यक्ति व्यर्थ ही स्वर्ग-नरक आदि भ्रम जालों में फंसा हुआ है। वह स्वर्ग एक मनुष्य एक धरातल का पक्षपाती है –

स्वर्ग नरक इस पर लोकों में
व्यर्थ भटकते धर्म मुड़ जान,
x x x
एक मनुज हो एक धरा हो
यही भागवत जीवन निरिखत।

इस एकता का आधार वर्ग संघर्ष न होकर मानवीय चेतना है। अर्थविद दर्शन को भी कवि न केवल इसी समन्वय एवं मानवीय चेतना के उत्थान के लिए स्वीकार किया है। ‘प्रशिक्षण’
के ‘पारिदर्शन’ में यह स्वयं स्वीकार करता है — "अपने इस नवीन काय्य संचरण में मैंने मध्यगुप्त आध्यात्मिकता तथा आदर्शवाद की चेतना को नवीन लोक चेतना का स्वरूप देने का प्रयत्न कर उसकी निक्रियात्मा को सक्रियता प्रदान करने की, उसकी वैधिकता को उन्नत सामाजिकता में परिवर्तित करने की चेष्टा की है। मैंने आदर्शवाद और वस्तुवाद के विरोध को नवीन चेतना के समन्वय में ढ़ालने का प्रयत्न किया है और भौतिक आध्यात्मिक अतिरंजनाओं का विरोध कर, भौतिकता, आध्यात्मिकता को एक ही सत्य के दो द्वीपों के रूप में ग्रहण कर, उन्हें लोक कल्याण के लिए महत्त्व सांस्कृतिक सामन्वय में एक दूसरे के पूरक के रूप में संयोजित करना चाहा है। अपने नवीन प्रगतियों में मैंने मनुष्य के लिए नवीन सांस्कृतिक हृदय को जन्म देने की आवश्यकता बताई है और उसे नवीन रागान्वक संवेदनाओं तथा नवीन प्रकाश के स्पर्शों से अनुप्रभावित करने का प्रयास किया है।"  

अरविन्द दर्शन को अपने अनुलोक स्वीकार करते हुए पंत लोक संगठन को व्यापक बनाने का प्रयास करते हैं। उनके काय्य रूपकों में इस विचारधारा का व्यापक रूप मिलता है। बाबजूद इसके उन्होंने किसी भी सिद्धांत का प्रचार नहीं किया अपितु उनकी दृष्टि जीवन के विशाल प्रांगण में एक ऐसा रजस्माग क्षोभजन में लीन रही जिस पर मनुष्य भावी उद्धतन के प्रकाश से आलोकित निरंतर उन्नति करता हुआ चलता रहे। दर्शन के नाम पर पंत की कोई गम्भीर देन न होते हुए भी उनकी विचारधारा का कल्याणकारी रूप तो प्रशस्तित रहेगा ही। कवि ने न तो घोर वैधिकता बिंतन की प्रतिष्ठा की है और न सामाजिकता में व्यक्तिदेव के लोप का समर्थन। पंत ने युग यथार्थ को उसकी विमलिका के अनेक रूपों में अभिव्यक्त किया और उन सब से ऊपर उठकर युग—मन को चेतना की व्यवस्था के लिए पुकारा है। उनकी दृष्टि किसी बाद—विवाद में न उलझकर स्वामन्य, सीधे, सच्चे मार्ग पर मानव कल्याण को खोजती है। कवि एक ऐसे युग—मन के प्रति आकुल अभिव्यक्ति करता है जो भीमण से नोमलता, असुन्दर से सुंदरता, विवेधो से शांति और अंधकार से प्रकाश की ओर ले चले —

ओ ज्योति तमस के अमृत पुरुष ।
यह जन—समुद्र का आवाहन, ।
x    x    x ।
गरजो, बरसो, हे मानव मन ।
हो जीवन उर्वर नव चेतन।"

उन्नीत विचार ने स्पष्ट है कि पंत ने अपने युग के प्रचलित विमलिका विचारधाराओं को केंद्र निर्धारित रूप में ग्रहण किया है। उसका कोरा प्रचार नहीं किया है उन्होंने इन विचारधाराओं के कल्याणकारी रूप को ही अपने काय्य का विषय बनाया है।
सांदर्भि

1. धर्मचन्द जैन एवं कैलाश चन्द्र दरोगा — आधुनिक भारतीय राजनीतिक धिंतक, पृ. 1
2. ओम प्रकाश गावा — राजनीति-धितक की रूपरेखा, पृ. 321
3. महात्मा गांधी — स्वराज, पृ. 77–78
4. ओम प्रकाश गावा — राजनीति-धितक की रूपरेखा, पृ. 320
5. ए.डी. आशीर्वंदन — राजनीति विज्ञान, पृ. 870
6. वही — पृ. 072
7. ओम प्रकाश गावा — राजनीति-धितक की रूपरेखा, पृ. 322
8. वही — पृ. 323
9. वही — पृ. 327
10. ई. चेलिसेव — सुमित्रानन्द पंत तथा आधुनिक हिंदी, कविता में परम्परा तथा नवीनता, पृ. 62
11. युगांत्र से 'बापू' के प्रति कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 24–25
12. ई. चेलिसेव — सुमित्रानन्द पंत, पृ. 75
13. ढा. किरण गर्ग — सु.न.पंत : कैथारिक व्यक्तित्व, पृ. 278
14. विश्वम्बर मानव — सुमित्रानन्द पंत, प्रयाग 1951, पृ. 307
15. युगांत्र से 'बापू' के प्रति कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 26
16. वही — पृ. 25
17. वही — पृ. 26
18. वही — पृ. 26
19. युगवाणी से 'बापू' कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 81
20. ग्राम्य से 'सरस्वती-गीत' कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 149
21. ग्राम्य से 'महात्मा गांधी के प्रति' कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 150
22. ग्राम्य से 'बापू' कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 171
23. वही — पृ. 171
24. वही — पृ. 171
25. ग्राम्य — 'संस्कृति के प्रसन' कविता, रचनावली—2, पृ. 169
26. ई. चेलिसेव — स.न. पंत, पृ. 162
27. युगपथ से 'अश्व' के फूल' कविता — रचनावली भाग—2, पृ. 29
28. वही — पृ. 29
29. वही — पृ. 29
30. युगपथ से 'श्रद्धा के फूल' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 33
31. वही - पृ. 32
32. वही - पृ. 31
33. ओमप्रकाश गावा - राजनीति-संबन्ध की रूपरेखा, पृ. 190
34. सुमित्रानन्दन पंत, साठ वर्ष - सुमित्रानन्दन पंत, पृ. 48
35. शीण कविता से - रचनावली भाग-1, पृ. 82
36. गुंजन कविता से - रचनावली भाग-1, पृ. 140
37. युगांत से 'गा कोकिल' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 07
38. युगान्त से 'द्रुत झरो...' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 07
39. ग्राम्या से 'ग्राम दृष्टि' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 132
40. ग्राम्या से 'सकलपति' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 166
41. ग्राम्या से 'वह बुद्धा' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 138
42. युगान्त से 'भाषा' कविता - रचनावली भाग-2, पृ. 23
43. सुमित्रानन्दन पंत - गोपालदास नीरज, पृ. 145
44. युगांत से 'भाषा' कविता - रचनावली भाग-5, पृ. 22
45. युगांत से 'दो लड़के' कविता - वही - पृ. 86
46. युगान्त से 'भूत दर्शन' कविता - वही - पृ. 92
47. युगान्त से 'साम्राज्यवाद' कविता - वही - पृ. 92
48. युगान्त से 'कृषक' कविता - वही - पृ. 95
49. युगान्त से 'कविताएं' कविता - वही - पृ. 95
50. ग्राम्या से 'चमरो' कविता - वही - पृ. 146
51. ग्राम्या से 'ग्रामराज' कविता - वही - पृ. 132
52. सुमित्रानन्दन पंत - बिमानव से उपवन, पृ. 177
53. युगान्त से 'चीटी' कविता - रचनावली भाग-5, पृ. 83
54. ग्राम्या से 'ग्रामश्री' कविता - रचनावली भाग-5, पृ. 141
55. उत्तरा की भूमिका ग्रंथावली भाग 3 से, पृ. 17-18
56. र्वर्ण धूलिले से 'मानू सेतना' कविता - ग्रंथावली भाग-7, पृ. 300
57. रज्जत शिखर से 'फूलों का देश' कविता - ग्रंथावली-3, पृ. 105
58. लोकपाठन : संस्कृति द्वार - 4, पृ. 173
59. रज्जत शिखर - ग्रंथावली-3, पृ. 79
60. वाणी - आलिका - रचनावली-4, पृ. 182
62. सौरण्य : दिगवजय – ग्रंथावली 3, पृ. 315
63. लोकायत – महाविदु, पृ. 239
64. लोकायत – ज्योतिर्दार, पृ. 515
65. लोकायत – कलात्म, पृ. 254
66. स्वर्ण किरण से – ‘श्री अरविन्द दर्शन’ कविता – ग्रंथावली 3, पृ. 256
67. सौरण्य – ग्रंथावली 4, पृ. 255
68. लोकायत – ज्योतिर्दार, पृ. 431
69. लोकायत – पूर्ण स्निति, पृ. 33
70. शिल्पी – वचस शेष – रचनावली 3, पृ. 214
71. लोकायत – संस्कृति द्वार, पृ. 193
72. रजत शिखर – रचनावली 4, पृ. 97
73. स्वर्ण किरण से – ‘स्वर्णोत्सव’ कविता – रचनावली 3, पृ. 227
74. उत्तरा से ‘निर्माणकल’ कविता – रचनावली 3, पृ. 45
75. वाणी – ‘बुध के प्रति’ – रचनावली 4, पृ. 165
76. लोकायत – ज्योतिर्दार, पृ. 550
77. पंत : कला, काव्य और दर्शन – गोपालदास नीरज, पृ. 176
78. यही – पृ. 140
79. यही – पृ. 140
80. यही – पृ. 189
81. सुगवाणी से रचनावली–2, पृ. 82
82. आधुनिक काव्याचार विचार और दृष्टि – ओम प्रकाश सिंह, पृ. 90
83. यही – पृ. 92
84. सुगवाणी से माक्षर के प्रति, रचनावली–2, पृ. 92
85. ग्राम्या से ‘वापू’ कविता, रचनावली–2, पृ. 171
86. ग्राम्या से ‘महालम गांधी के प्रति’ कविता, रचनावली–2, पृ. 150
87. यही – पृ. 150
88. आधुनिक कवि–2 – सुमित्रान्दन पंत, पृ. 25
89. उत्तरा की मूर्मिका से, रचनावली–3, पृ. 17
90. रघिराण – सुमित्रान्दन पंत, पृ. 134
91. यही – पृ. 20–21
92. विद्वंद्वा – सुमित्रान्दन पंत, पृ. 305